[2008] 4 एससीआर 1110

पंकज शर्मा

बनाम

जम्मू एवं कश्मीर राज्य एवं अन्य

(सिविल अपील संख्या 1997/2008)

14 मार्च, 2008

(माननीय न्यायमूर्ति सी.के. ठक्कर तथा अल्तमस कबीर, जे.जे.)

जम्मू एवं कश्मीर संयुक्त प्रतियोगी परीक्षा प्रत्यक्ष भर्ती नियम, 1995 :

जम्मू एवं कश्मीर संयुक्त प्रतियोगी परीक्षा, 1995 - प्रारंभिक परीक्षा - प्रश्नपत्रों में त्रुटियाँ - राज्य लोक सेवा आयोग द्वारा संदिग्ध/गलत प्रश्नों को हटाना तथा ऐसे प्रश्नों के अंक शेष प्रश्नों में आनुपातिक (प्रो-राटा) रूप से जोड़ना - असफल अभ्यर्थियों द्वारा प्रारंभिक परीक्षा निरस्त करने हेतु रिट याचिका दायर -उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश द्वारा प्रारंभिक परीक्षा को निरस्त करने से इंकार, किंतु कुछ और संदिग्ध/गलत प्रश्नों को हटाने तथा उनके अंक शेष प्रश्नों में आनुपातिक रूप से जोड़ने, असफल अभ्यर्थियों की मेरिट पुनः तैयार करने तथा उन अभ्यर्थियों के लिए विशेष मुख्य परीक्षा आयोजित करने का निर्देश, जिन्होंने इस प्रकार अंतिम संक्षिप्त सूची किए गए अभ्यर्थी के बराबर या उससे अधिक अंक प्राप्त कर लिए हों -उच्च न्यायालय की खंडपीठ द्वारा हस्तक्षेप से इंकार -

आयोग द्वारा आदेश एवं निर्देशों का अनुपालन -अभिनिर्धारित : परिस्थितियों में आयोग द्वारा अपनाई गई कार्यप्रणाली एवं की गई कार्रवाई को नियमों के विपरीत नहीं कहा जा सकता। उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश ने विवाद को उचित दृष्टिकोण से विचारित कर अभ्यर्थियों के व्यापक हित में निर्देश जारी किए। पारित आदेश एवं दिए गए निर्देशों में कोई त्रुटि नहीं है, अतः किसी प्रकार के हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

जम्मू एवं कश्मीर लोक सेवा आयोग (व्यवसाय और प्रक्रिया) नियम, 1980:

धारा 6, 9 और 11 - जम्मू एवं कश्मीर संयुक्त प्रतियोगी परीक्षा, 1995 - प्रारंभिक परीक्षा - प्रश्नपत्रों में त्रुटियाँ - आयोग द्वारा विशेषज्ञों की राय लेने के बाद संदिग्ध/गलत प्रश्नों को हटाना और ऐसे प्रश्नों के अंक शेष प्रश्नों में आनुपातिक (प्रो-राटा) रूप से जोड़ना - अपनाई गई कार्यप्रणाली सभी उपस्थित सदस्यों द्वारा सर्वसम्मति से अनुमोदित - बाद में एक अनुपस्थित सदस्य ने भी अपनाई गई कार्यप्रणाली को मान्यता दी -निष्कर्ष:आयोग द्वारा लिए गए निर्णय आयोग के बहुमत के अनुसार थे। उस सदस्य का वार्ड अभ्यर्थी होने के बावजूद प्रक्रिया में भाग लेने पर उसे अयोग्य नहीं माना जा सकता। अपनाई गई कार्यप्रणाली परिस्थितियों में अनुचित या तर्कहीन नहीं थी। किसी भी सदस्य की बाद में असहमति पूर्व कार्रवाई को अवैध या असुरक्षित नहीं बनाती। प्रारंभिक परीक्षा केवल 'स्क्रीनिंग टेस्ट' के रूप में थी, जो मुख्य परीक्षा में प्रवेश के लिए अभ्यर्थियों की सूची तक सीमित थी, और इसमें प्राप्त अंक अंतिम चयन पर कोई प्रभाव नहीं डालते।

भारत का संविधान, 1950: अनुच्छेद 136 - सबूतों का पुनर्मूल्यांकन और मामले का अंतिम निपटारा सर्वोच्च न्यायालय द्वारा -जम्मू एवं कश्मीर संयुक्त प्रतियोगी

परीक्षा - प्रारंभिक परीक्षा - प्रश्नपत्रों में त्रुटियाँ - उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश ने संदिग्ध/गलत प्रश्नों को हटाने और उनके अंक शेष प्रश्नों में जोड़ने का निर्देश दिया और असफल अभ्यर्थियों की मेरिट पुनः तैयार करने का आदेश दिया। उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने संक्षिप्त आदेश में अपील खारिज कर दी। अभिनिर्धारित: यह सच है कि खंडपीठ ने रिट याचिकाओं में उठाए गए सभी बिंदुओं पर विचार नहीं किया और उन्हें एकल न्यायाधीश द्वारा निर्णयित किया गया। लेकिन प्रश्न की महत्त्वपूर्णता और इसके दूरगामी प्रभाव को ध्यान में रखते हुए, सर्वोच्च न्यायालय ने मामले को विस्तार से देखा, रिकॉर्ड की समीक्षा की और पक्षों द्वारा उठाए गए बिंदुओं का पुनः परीक्षण किया। ऐसा इसलिए किया गया ताकि मामले का अंतिम निपटारा किया जा सके, बजाय इसे फिर से उच्च न्यायालय की खंडपीठ को भेजने के, जिससे और देरी होती।

न्यायिक प्रशासन के हित में सर्वोच्च न्यायालय ने मामला पूरी तरह से निपटाया।

जम्मू एवं कश्मीर लोक सेवा आयोग द्वारा 1.4.2005 की अधिसूचना जारी की गई, जिसमें राज्य में 18 गज़ेटेड सेवाओं के 132 पदों को भरने हेतु जम्मू एवं कश्मीर संयुक्त प्रतियोगी परीक्षा के लिए आवेदन आमंत्रित किए गए। आवेदकों को पहले प्रारंभिक परीक्षा में उपस्थित होना था और केवल शॉर्ट-लिस्ट किए गए सफल अभ्यर्थियों को मुख्य परीक्षा में उपस्थित होना था, जिसमें लिखित परीक्षा के बाद मौखिक साक्षात्कार भी शामिल था।कुछ ऐसे अभ्यर्थियों, जो प्रारंभिक परीक्षा में सफल नहीं हो पाए, ने उच्च न्यायालय में रिट याचिकाएँ दायर कीं और निम्नलिखित आपत्तियाँ उठाईं: प्रश्नपत्रों में वर्तनी की गलतियाँ, मुद्रण त्रुटियाँ और विसंगतियाँ थीं।कुछ प्रश्नों के उत्तर संदिग्ध थे और कुछ के उत्तर गलत थे।

आयोग द्वारा कुछ प्रश्नों को हटाकर उनके अंक शेष प्रश्नों में आनुपातिक (प्रो-राटा) रूप से जोड़ने की विधि उचित नहीं थी।यह निर्णय अवैध था क्योंकि इसे आयोग के बहुमत द्वारा नहीं लिया गया था; अध्यक्ष को छोड़कर केवल तीन सदस्य उपस्थित थे, जिनमें से दो सदस्य इस विधि के विरोधी थे और तीसरे सदस्य को अयोग्य माना गया क्योंकि उसका वार्ड एक अभ्यर्थी था। आयोग का निर्णय भेदभावपूर्ण भी था क्योंकि प्रो-राटा अंक की विधि केवल असफल अभ्यर्थियों पर लागू की गई और पहले से सफल हुए अभ्यर्थियों को इसका लाभ नहीं दिया गया।रिट याचिकाकर्ताओं ने प्रारंभिक परीक्षा के परिणामों को रद्द करने और आयोग को निर्देश देने की प्रार्थना की कि वह एक नई प्रारंभिक परीक्षा आयोजित करे।

उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश ने निर्देश दिया: संबंधित प्रश्नपत्रों से और कुछ प्रश्न हटाने के लिए।हटाए गए प्रश्नों के अंक शेष प्रश्नों में आनुपातिक (प्रो-राटा) रूप से जोड़ने के लिए।सभी असफल अभ्यर्थियों की मेरिट को उसी अनुसार पुनः तैयार करने के लिए। जिन अभ्यर्थियों की मेरिट अंतिम शॉर्ट-लिस्ट किए गए अभ्यर्थी के बराबर या उससे अधिक थी, उनके लिए आयोग द्वारा निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार विशेष मुख्य परीक्षा आयोजित करने के लिए।रिट याचिकाकर्ताओं ने इसके खिलाफ इन्ट्रा कोर्ट अपील दायर की।उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने अपीलें खारिज करते हुए कहा कि एकल न्यायाधीश के निर्णय के खिलाफ कोई ठोस आधार नहीं है। इसके बाद, असंतुष्ट रिट याचिकाकर्ताओं ने सर्वोच्च न्यायालय में अपील दायर की।

अपीलें खारिज करते हुए, अदालत ने कहा:

1.1. अपीलकर्ताओं ने एकल न्यायाधीश द्वारा पारित और उच्च न्यायालय की खंडपीठ द्वारा पुष्टि किए गए आदेश में हस्तक्षेप करने का कोई ठोस कारण प्रस्तुत नहीं किया है। [अनुच्छेद 14] [1127-D]

1.2. यह सही है कि उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने रिट याचिकाओं में उठाए गए सभी बिंदुओं पर विचार नहीं किया और उसका आदेश बहुत संक्षिप्त था। लेकिन प्रश्न की महत्वपूर्णता और इसके दूरगामी प्रभाव को ध्यान में रखते हुए, सर्वोच्च न्यायालय ने मामले को विस्तार से देखा, संबंधित रिकॉर्ड की समीक्षा की और पक्षों द्वारा उठाए गए बिंदुओं का पुनः परीक्षण किया। ऐसा इसलिए किया गया ताकि मामला अंतिम रूप से निपटाया जा सके, बजाय इसे फिर से उच्च न्यायालय की खंडपीठ को भेजने के, जिससे और देरी होती। [पैरा 54] [1152-E-G]

2.1. आयोजित करने की प्रक्रिया "**जम्मू और कश्मीर संयुक्त प्रतियोगी परीक्षा प्रत्यक्ष भर्ती नियम, 1995**" द्वारा संचालित होती थी। 1995 के नियमों के अनुसार, संयुक्त प्रतियोगी परीक्षा को दो क्रमिक चरणों में आयोजित किया जाना था। प्रारंभिक परीक्षा केवल एक "स्क्रीनिंग टेस्ट" के रूप में कार्य करती थी और इस परीक्षा में उम्मीदवारों द्वारा प्राप्त अंक केवल मुख्य परीक्षा में प्रवेश पाने और योग्य घोषित होने के उद्देश्य के लिए ही थे। ये अंक अंतिम मेरिट सूची या चयन में शामिल नहीं किए जाते थे। [पैरा 14-15] [1127-F-G; 1128-C-D]

2.2. जहाँ तक आयोग द्वारा संदिग्ध/गलत प्रश्नों को दिए गए अंकों को हटाने और उन अंकों को शेष प्रश्नों में अनुपातिक (प्रो-राटा) रूप से

जोड़ने के निर्णय का संबंध है, उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश ने यह टिप्पणी की कि जिस मूल आधार पर रिट याचिकाकर्ताओं ने आयोग की इस कार्रवाई को चुनौती दी थी, वह न तो ठोस था और न ही तथ्यात्मक रूप से सही था।

आयोग की बैठक की कार्यवाही से भी यह स्पष्ट है कि 7 जुलाई 2005 को, जब गलतियों, त्रुटियों, अस्पष्टताओं आदि के कारण कथित रूप से हुई अन्यायपूर्ण स्थिति को दूर करने के लिए एक विशेष पद्धति अपनाने का निर्णय लिया गया, उस समय अध्यक्ष सहित पाँच सदस्य उपस्थित थे और उसी बैठक में निर्णय लिया गया। आयोग के अनुसार, एक सदस्य उस समय शहर से बाहर था और इसलिए बैठक में उपस्थित नहीं हो सका। फिर भी, बैठक में उपस्थित पाँच सदस्यों द्वारा लिया गया निर्णय सर्वसम्मति से था।

रिकॉर्ड से तथा एकल न्यायाधीश के निष्कर्ष के अनुसार यह भी स्पष्ट है कि बाद की बैठकों में वह सदस्य भी उपस्थित रहा और उसने 7 जुलाई 2005 को आयोग द्वारा लिए गए पूर्व निर्णय से सहमति व्यक्त की । यह सही है कि बाद में दो सदस्यों ने पूर्व निर्णयों से असहमति व्यक्त की, किन्तु इससे पूर्व में की गई कार्रवाई अवैध, विधि के विरुद्ध या अन्यथा अस्थिर नहीं हो जाती, क्योंकि आयोग का निर्णय जम्मू और कश्मीर लोक सेवा आयोग (व्यवसाय और प्रक्रिया) नियम, 1980 के नियम 6, 9 और 11 के अनुसार लिया गया था।

आयोग द्वारा लिए गए निर्णय या तो सर्वसम्मति से या बहुमत से लिए गए थे, जो आयोग के नियमों के अनुरूप थे। [पैरा 34-35 और 39] [1141-E, F; 1142-C-F; 1143-D, E]

3.1 जहाँ तक उस सदस्य की भागीदारी का प्रश्न है, जिसका पुत्र परीक्षा में उम्मीदवार था, एकल न्यायाधीश ने सही रूप से यह देखा कि अयोग्यता का सवाल केवल उस स्थिति में उठ सकता था जब वह सदस्य चयन के चरण में भाग लेता, जहाँ किसी उम्मीदवार की मेरिट का मूल्यांकन किया जाना था। आयोग द्वारा स्पष्ट किया गया कि चयन प्रारंभिक परीक्षा के आधार पर नहीं किया गया था। यह केवल मुख्य परीक्षा में प्रवेश पाने और योग्य घोषित होने के उद्देश्य के लिए प्रासंगिक था। प्रारंभिक परीक्षा केवल एक "स्क्रीनिंग टेस्ट" की प्रकृति की थी और चयन या मेरिट का निर्धारण प्रारंभिक परीक्षा के परिणाम के आधार पर नहीं किया जाना था। [पैरा 40] [1144-A, B & C]

3.2 जहाँ तक आयोग की बात है, आयोग ने किसी "व्यक्तिगत उम्मीदवार" के पक्ष में या खिलाफ कोई निर्णय नहीं लिया, बल्कि इसका निर्णय "नीतिगत निर्णय" था। प्रश्नपत्रों के खिलाफ व्यापक शिकायतों को ध्यान में रखते हुए, सामान्य कार्रवाई आवश्यक थी। यह सुनिश्चित करना जरूरी था कि जब किसी उम्मीदवार की कोई गलती नहीं हो, तब भी वह नुकसान न उठाए। ऐसी स्थिति में समाधान खोजने के लिए, आयोग के सभी सदस्य उपस्थित होकर उचित कार्रवाई करने के लिए शामिल होना चाहिए थे। किसी भी

व्यक्तिगत उम्मीदवार के प्रति पूर्वाग्रह या पक्षपात दिखाने का सवाल नहीं था। इसलिए, उच्च न्यायालय ने सही रूप से यह कहा कि संबंधित सदस्य को बैठक में भाग लेने और कार्यवाही में शामिल होने से अयोग्य नहीं माना जा सकता। [पैरा 40] [1144-D, E, F]

4. जहाँ तक याचिकाकर्ताओं के यह दलील का सवाल है कि सफल उम्मीदवारों को अतिरिक्त अंक का लाभ न देना उनके साथ अन्याय हुआ, इसे देखा जाए तो यह स्पष्ट है कि प्रारंभिक परीक्षा में सफल उम्मीदवारों ने यह दलील नहीं उठाई।

इसके अलावा, प्रारंभिक परीक्षा केवल मुख्य परीक्षा में प्रवेश पाने के लिए उम्मीदवारों की "संक्षिप्त सूची" में चयनतक सीमित थी, जिसका अनुपात 1:13 था। यह अंतिम चयन के लिए प्रासंगिक नहीं थी, क्योंकि प्रारंभिक परीक्षा में प्राप्त अंक अंतिम चयन और मेरिट सूची बनाने में शामिल नहीं किए जाते थे।

इसलिए, यह नहीं कहा जा सकता कि "चयनित" उम्मीदवारों को अतिरिक्त अंक का लाभ न देने से, जो "अचयनित" उम्मीदवारों को दिया गया था, चयनित उम्मीदवारों के साथ अन्याय हुआ। [पैरा 41] [1144-G & H; 1145-A, B & C]

5.1. एकल न्यायाधीश ने सही रूप से यह निष्कर्ष निकाला कि अनिवार्य और वैकल्पिक विषयों के प्रश्नों में त्रुटियाँ थीं, और यह मानना संभव नहीं था कि आयोग ने समय रहते सुपरवाइज़रों को आवश्यक निर्देश जारी किए और उन्हें परीक्षा केंद्रों में घोषित कर सुधार करवा दिए।

एकल न्यायाधीश ने यह भी सही रूप से देखा कि कोई सबूत नहीं है कि आयोग ने समय बढ़ाया, और इसलिए यह संभव नहीं था कि सभी केंद्रों में सुधार सूचना उम्मीदवारों तक परीक्षा अवधि के भीतर पहुँचाई गई हो। यह तथ्य इस अतिरिक्त तथ्य से भी स्पष्ट है कि शिकायतों के प्राप्त होने के बाद, आयोग ने 6 जुलाई, 2005 को प्रेस नोट जारी किया और उम्मीदवारों को आश्वस्त किया कि आयोग मामले की जाँच करेगा और उनके साथ कोई अन्याय नहीं होगा।इसलिए, यह स्पष्ट है कि आयोग के अनुसार भी, प्रारंभिक परीक्षा के समाप्त होने के बाद कुछ कार्रवाई आवश्यक थी। [पैरा 42 और 45] [1145-C-G; 1148-E, F, G]

विजय सिंह चरक बनाम भारत संघ एवं अन्य, (2007) 3 स्केल 503- असंबंधित पाया गया।

5.2. ऐसी परिस्थितियों में, आयोग ने स्वयं की पहल पर विशेषज्ञों की राय के आधार पर कुछ सुधारात्मक कदम उठाए। फिर, जब उच्च न्यायालय ने महसूस किया कि और भी कार्रवाई आवश्यक थी और कुछ निर्देश जारी किए, तो आयोग ने एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश और निर्देशों को स्वीकार किया और चुनौती नहीं दी। आयोग द्वारा अपनाया गया दृष्टिकोण असंगत या गैर-तर्कसंगत नहीं कहा जा सकता। वास्तव में, ऐसी स्थिति में, कानून की अदालत द्वारा उपयुक्त सुधारात्मक उपाय हमेशा किए जा सकते हैं। [पैरा 48] [1149-G & H; 1150-A]

कानपुर यूनिवर्सिटी बनाम समीर गुप्ता, (1983) 4 SCC 309; अभिजीत सेन बनाम स्टेट ऑफ़ यूपी, (1984) 2 SCC 319- इसका अनुसरण किया गया।

5.3. एकल न्यायाधीश ने विवाद को सही परिप्रेक्ष्य में और त्रुटियाँ/गलतियाँ/असंगतियों के प्रकाश में देखा और ऐसे निर्देश जारी किए जो उम्मीदवारों के हित में थे। यह कार्य आयोग द्वारा ही किया गया था और मेरिट सूची को पुनः तैयार किया गया।

कुछ ऐसे उम्मीदवार जिन्हें पहले अयोग्य घोषित किया गया था, उन्हें योग्य घोषित किया गया और उसके अनुसार अधिसूचना भी जारी की गई। इस प्रकार की कार्रवाई के खिलाफ कोई आपत्ति नहीं की जा सकती।एकल न्यायाधीश ने प्रारंभिक परीक्षा को रद्द नहीं किया और आयोग से नई परीक्षा कराने का आदेश नहीं दिया, यह सही निर्णय था। संबंधित रिकॉर्ड के आधार पर, एकल न्यायाधीश ने आवश्यक निर्देश जारी किए जो उम्मीदवारों के हित में थे और प्रशासन के बड़े हित में भी थे।जारी किए गए आदेश और निर्देशों में कोई दोष नहीं है, और इसलिए इसमें हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।इस प्रकार, उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश को अवैध, गैरकानूनी या अन्यथा आपत्तिजनक नहीं कहा जा सकता।

[पैरा 53-55] [1152-C, D, E, G & H; 1153-A & B]

सिविल अपीलीय अधिकारिता : सिविल अपील संख्या 1997 वर्ष 2008।

यह अपील जम्मू एवं कश्मीर उच्च न्यायालय, जम्मू द्वारा दिनांक 28/12/2006 को एल.पी.ए. (ओ डब्लू) संख्या 70 वर्ष 2006 में पारित अंतिम निर्णय/आदेश के विरुद्ध दायर की गई है।

साथ में

सिविल अपील संख्या 2013, 2014 तथा 2010 वर्ष 2008।

अपीलकर्ता की ओर से अधिवक्ता: टी. एस. दोआबिया, भीम सिंह, बी. एस. बिलोरिया, मंजूर अली खान, रितु पुरी, अभिषिक गर्ग, दिनेश कुमार गर्ग, सतीश विग और जगजीत सिंह छाबड़ा।

प्रतिवादियों की ओर से अधिवक्ता:डी . सी. रैना, जेड. ए. शाह, मुकुल रोहतगी, यशांक अध्यरु, जी. एम. कावूसा, एफ. ए. नतनो, एन. गणपति, अनीस सुहरावर्दी, एस. एच. मेहदी इमाम, पूर्णिमा भट और पी. वी. योगेश्वरन।

न्यायालय का आदेश निम्नानुसार दिया गया:

न्यायमूर्ति सी. के. ठक्कर द्वारा:

1. आई.ए. संख्या 1 वर्ष 2007, जो कि विशेष अनुमति याचिका (सी) संख्या सीसी 5233 वर्ष 2007 में एस एल पी दाखिल करने की अनुमति हेतु प्रस्तुत की गई थी, स्वीकार की जाती है।

2. सभी विशेष अनुमति याचिकाओं में अनुमति प्रदान की जाती है।

3. वर्तमान अपीलें जम्मू एवं कश्मीर उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश द्वारा 10 नवम्बर 2006 को मूल रिट याचिका संख्या 442/2005 तथा उससे संबंधित अन्य मामलों में पारित निर्णय एवं आदेश के विरुद्ध दायर की गई हैं। उक्त निर्णय की पुष्टि डिवीजन बेंच द्वारा 28 दिसम्बर 2006 को लेटर पेटेंट अपील (ओ डब्लू) संख्या 70/2006 में की गई थी।

उक्त आदेश द्वारा माननीय एकल न्यायाधीश ने याचिकाकर्ताओं द्वारा दायर रिट याचिकाओं को आंशिक रूप से स्वीकार करते हुए जम्मू एवं कश्मीर लोक सेवा आयोग को कुछ निर्देश जारी किए।

4. विवाद को समझने के लिए कुछ प्रासंगिक तथ्यों का उल्लेख आवश्यक है।

5. चयन प्रक्रिया जम्मू एवं कश्मीर लोक सेवा आयोग (संक्षेप में 'आयोग') द्वारा 1 अप्रैल 2005 को जारी अधिसूचना के माध्यम से संयुक्त प्रतिस्पर्धात्मक परीक्षा के तहत 18 राजपत्रित सेवाओं के 132 पदों को भरने के लिए प्रारंभ की गई। यह परीक्षा 3 जुलाई 2005 को आयोजित की गई। अपीलकर्ता-याचिकाकर्ताओं ने प्रारंभिक परीक्षा में भाग लिया, किन्तु वे 'शॉर्ट-लिस्टिंग' प्रक्रिया में पात्र और योग्य नहीं ठहराए गए, जिसके कारण वे मुख्य परीक्षा तथा मौखिक साक्षात्कार में सम्मिलित नहीं हो सके। प्रारंभिक परीक्षा की चयन प्रक्रिया को अन्य बातों के साथ-साथ इस आधार पर चुनौती दी गई कि उसमें कई त्रुटियाँ थीं, जैसे– वर्तनी की गलतियाँ, मुद्रण त्रुटियाँ, प्रश्नों में विसंगतियाँ, ऐसे प्रश्न जिनके उत्तर संदिग्ध थे, यहाँ तक कि कुछ प्रश्नों के उत्तर गलत

थे। यह भी कहा गया कि आयोग द्वारा कुछ प्रश्नों को हटाकर उनके अंक शेष प्रश्नों में प्रो-राटा आधार पर जोड़ने का तरीका उचित नहीं था।इसके अतिरिक्त यह भी आरोप लगाया गया कि यह निर्णय आयोग के सदस्यों के बहुमत द्वारा नहीं लिया गया, क्योंकि आयोग के सभी सदस्य सुधारात्मक प्रक्रिया में शामिल नहीं हुए थे। केवल अध्यक्ष के अतिरिक्त तीन सदस्य ही उपस्थित थे। उन तीन सदस्यों में से दो सदस्यों ने आयोग द्वारा प्रस्तावित पद्धति का विरोध किया और उसके विरुद्ध थे।जहाँ तक तीसरे सदस्य का प्रश्न है, वे इस प्रक्रिया में भाग लेने के लिए अयोग्य और अपात्र थे, क्योंकि उनका परिजन भी उम्मीदवार/आकांक्षियों में से एक था। इसलिए उन्हें बैठक में उपस्थित होकर प्रक्रिया में भाग नहीं लेना चाहिए था। इस प्रकार निर्णय वस्तुतः केवल अध्यक्ष द्वारा ही लिया गया, जबकि उसे गलत रूप से आयोग का निर्णय बताया गया। अतः यह कहा गया कि आयोग द्वारा अपनाई गई पूरी प्रक्रिया पूर्णतः अवैध, गैर-कानूनी और मनमानी थी तथा यह संविधान के साथ छल के समान है। इसलिए इसे निरस्त करते हुए आयोग को कानून के अनुसार प्रारंभिक परीक्षा पुनः आयोजित करने का निर्देश दिया जाना चाहिए ।

6. आयोग ने प्रत्युत्तर हलफनामा दाखिल करते हुए याचिका में किए गए कथनों और लगाए गए आरोपों से इनकार किया। आयोग ने यह स्वीकार किया कि प्रश्न-पत्रों में कुछ त्रुटियाँ थीं, किंतु उन्हें समय रहते आवश्यक निर्देश देकर ठीक कर दिया गया था। यह भी कहा गया कि जिन प्रश्नों में गंभीर प्रकृति की त्रुटियाँ थीं अथवा जिनके उत्तर गलत या संदिग्ध थे, उन मामलों में आयोग ने विषय पर विचार किया, विशेषज्ञों की राय

प्राप्त की और उन प्रश्नों को हटाने का निर्णय लिया। यह भी निर्णय किया गया कि उन प्रश्नों के लिए निर्धारित अंक शेष प्रश्नों में प्रो-राटा आधार पर जोड़ दिए जाएंगे। यह कहना सही नहीं है कि अध्यक्ष के अतिरिक्त केवल तीन सदस्य ही उपस्थित थे। वास्तव में कुल छह सदस्य (अध्यक्ष सहित पाँच सदस्य) उपस्थित थे। अपनाई गई पद्धति को सभी सदस्यों ने सर्वसम्मति से अनुमोदित किया था और उसी आधार पर निर्णय लिए गए।

बाद में, हालांकि, दो सदस्यों ने कुछ निर्णयों से असहमति व्यक्त की, फिर भी वे निर्णय बहुमत से लिए गए निर्णय थे। इसलिए आयोग द्वारा की गई अंतिम कार्रवाई में कोई त्रुटि नहीं पाई जा सकती।आयोग ने यह भी कहा कि जहाँ तक प्रारंभिक परीक्षा का संबंध है, वह केवल उम्मीदवारों की मुख्य परीक्षा के लिए पात्रता निर्धारित करने हेतु आयोजित की गई थी। इसका उद्देश्य केवल 1:13 के अनुपात में उम्मीदवारों की 'शॉर्ट-लिस्टिंग' करना था।जहाँ तक अंतिम चयन का प्रश्न है, वह मुख्य परीक्षा, अर्थात् दूसरी परीक्षा के आधार पर किया जाना था, जिसमें दो चरण शामिल थे–

1. लिखित परीक्षा, और 2. मौखिक साक्षात्कार ।

इस प्रकार, प्रारंभिक परीक्षा का अंतिम चयन से कोई प्रत्यक्ष संबंध नहीं था और उससे किसी भी उम्मीदवार को अंतिम चयन की दृष्टि से कोई पूर्वाग्रह या अन्याय नहीं हो सकता था।यह भी प्रस्तुत किया गया कि आयोग ने उम्मीदवारों की शिकायतों पर विचार करते हुए स्थिति को

इस प्रकार संभाला कि किसी भी उम्मीदवार के साथ अन्याय न हो। इसलिए याचिकाएँ खारिज किए जाने योग्य थीं।

7. माननीय एकल न्यायाधीश ने पक्षकारों के प्रतिद्वंद्वी तर्कों पर विचार किया, संबंधित अभिलेखों का अवलोकन किया तथा आयोग की ओर से दाखिल हलफनामे के साथ-साथ आयोग के दो सदस्यों द्वारा अलग-अलग दाखिल किए गए उन हलफनामों को भी देखा, जिन्होंने आयोग द्वारा अपनाई गई अंतिम प्रक्रिया से असहमति व्यक्त की थी। इसके बाद माननीय न्यायाधीश ने निम्नलिखित निर्देश जारी किए।

> "उपरोक्त कारणों तथा मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए, मैं सभी रिट याचिकाओं को स्वीकार करता हूँ और लोक सेवा आयोग को निम्नलिखित निर्देश देता हूँ:
>
> (a) 'A' श्रृंखला के प्रत्येक प्रश्न-पत्र से निम्नलिखित प्रश्नों तथा उनके 'B', 'C' और 'D' श्रृंखला में संबंधित प्रश्नों को हटाया जाए और उन प्रश्नों के अंक शेष प्रश्नों में प्रो-राटा आधार पर बाँट दिए जाएँ:
>
> (i) से (xi) .....
>
> (b)मुख्य परीक्षा के लिए चयनित न किए गए सभी अभ्यर्थियों की अनिवार्य विषय 'सामान्य अध्ययन' के प्रश्न-पत्र के संबंध में अलग से पुनः मेरिट सूची तैयार की जाए।

(c) उपर्युक्त निर्देश (a) के अनुसार, उक्त दस वैकल्पिक विषयों के संबंध में मुख्य परीक्षा के लिए चयनित न किए गए सभी अभ्यर्थियों की मेरिट सूची पुनः तैयार की जाए।

(d) उन अभ्यर्थियों की एक संयुक्त मेरिट सूची अलग से पुनः तैयार की जाए, जिन्होंने अनिवार्य सामान्य अध्ययन के प्रश्न-पत्र तथा वैकल्पिक विषयों के प्रश्न-पत्रों में भाग लिया है, जैसा कि निर्देश (a) में उल्लेखित है।

(e) इसके अतिरिक्त उन अभ्यर्थियों के लिए, जिनके वैकल्पिक विषयों के प्रश्न-पत्रों में कोई त्रुटि या विसंगति नहीं थी, अर्थात् शेष 12 वैकल्पिक विषयों (जिनमें पशुपालन, वनस्पति विज्ञान, भारतीय इतिहास और भौतिकी के प्रश्न-पत्र भी शामिल हैं) के संबंध में, और जो शॉर्ट-लिस्ट नहीं किए गए थे, सामान्य अध्ययन तथा वैकल्पिक प्रश्न-पत्रों की संयुक्त मेरिट सूची पुनः तैयार की जाए।

(f) जिन अभ्यर्थियों की इस प्रकार पुनः तैयार की गई संयुक्त मेरिट, अंतिम शॉर्ट-लिस्ट किए गए अभ्यर्थी की मेरिट के बराबर या उससे अधिक हो, उन सभी अभ्यर्थियों के लिए विशेष मुख्य परीक्षा आयोजित की जाए, जो परीक्षा नियमों में निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार हो।

(g) उपर्युक्त संपूर्ण प्रक्रिया छह सप्ताह की अवधि के भीतर पूरी की जाए।

(h) रिट याचिकाकर्ताओं को व्यय के रूप में कुल 1,30,000 रुपये का भुगतान किया जाए, अर्थात् प्रत्येक रिट याचिका में 10,000 रुपये, जिसे सभी याचिकाकर्ताओं के बीच समान रूप से बाँटा जाएगा।"

8. माननीय एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश को असंतुष्ट रिट-याचिकाकर्ताओं ने अंतर-न्यायालय में अपील दायर करके चुनौती दी। डिवीजन बेंच ने संक्षिप्त आदेश पारित करते हुए अपीलों को यह कहते हुए खारिज कर दिया कि उसे एकल न्यायाधीश के निर्णय के विरुद्ध "किसी भी शिकायत का कोई आधार नहीं" मिला। अब अपीलकर्ता इस न्यायालय के समक्ष आए हैं।

9. दिनांक 2 फरवरी 2007 को यह मामला प्रवेश सुनवाई के लिए प्रस्तुत हुआ और नोटिस जारी किया गया। पक्षकारों को हलफनामे दाखिल करने का निर्देश दिया गया। 5 अप्रैल 2007 को आई.ए. संख्या 2/2007 में अंतरिम राहत प्रदान की गई और यह आदेश दिया गया कि यद्यपि कार्यवाही जारी रह सकती है, किंतु कोई वास्तविक नियुक्ति नहीं की जाएगी। इसके पश्चात रजिस्ट्री को मामलों को अंतिम सुनवाई हेतु सूचीबद्ध करने का निर्देश दिया गया। इसी प्रकार यह मामला हमारे समक्ष प्रस्तुत हुआ है।

10. हमने दोनों पक्षों के अधिवक्ताओं की दलीलें सुनीं।

11. अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने तर्क दिया कि आयोग ने वस्तुतः स्वयं को एकल सदस्य आयोग में परिवर्तित कर लिया था, अतः आयोग द्वारा लिए गए सभी निर्णय कानून की शक्ति, अधिकार अथवा

क्षेत्राधिकार से रहित माने जाने चाहिए। अध्यक्ष के अतिरिक्त केवल तीन सदस्य थे। उनमें से दो सदस्य अध्यक्ष द्वारा सुझाई गई पद्धति के विरुद्ध थे, और तीसरा सदस्य अयोग्य तथा अर्हताहीन था। इस प्रकार मामला केवल अध्यक्ष की इच्छा पर छोड़ दिया गया और इसलिए लिया गया निर्णय वास्तव में 'आयोग' का निर्णय नहीं था।यह भी कहा गया कि सदस्यों के बीच कोई सहमति नहीं थी, इसलिए आयोग द्वारा किया गया पूरा अभ्यास वैध नहीं था। आयोग के पास एकमात्र विकल्प यह था कि वह प्रारंभिक परीक्षा पुनः आयोजित करता, और उच्च न्यायालय ने परीक्षा को वैध ठहराकर तथा कुछ निर्देश जारी करके त्रुटि की। अधिवक्ता ने यह भी कहा कि प्रश्न-पत्रों में हुई त्रुटियाँ मूलभूत और गंभीर थीं। अनिवार्य तथा वैकल्पिक दोनों विषयों में प्रश्न वस्तुनिष्ठ प्रकृति के थे, इसलिए आयोग का यह दायित्व था कि प्रत्येक प्रश्न का केवल एक सही उत्तर हो। किंतु कुछ प्रश्न पूरी तरह गलत थे, उनमें स्पष्ट त्रुटियाँ थीं, वे अस्पष्ट और संदिग्ध थे, कुछ प्रश्नों के एक से अधिक सही उत्तर थे और उन्होंने परीक्षा के दौरान अभ्यर्थियों को भ्रमित किया।ऐसी परीक्षा को कानून की दृष्टि में वैध परीक्षा नहीं कहा जा सकता। उच्च न्यायालय ने यह स्वीकार करने के बावजूद कि त्रुटियाँ गंभीर थीं और कई निर्देश देने पड़े, फिर भी परीक्षा को वैध ठहराकर गंभीर भूल की। यह भी तर्क दिया गया कि आयोग द्वारा पूरी परीक्षा प्रक्रिया आरंभ से ही अवैध, भेदभावपूर्ण और आयोग द्वारा बनाए गए नियमों के उल्लंघन में थी, और इस आधार पर भी परीक्षा को निरस्त किया जाना चाहिए।

यह शिकायत भी की गई कि विषय विशेषज्ञों से कोई राय नहीं ली गई, जैसा कि आयोग के दो असहमति रखने वाले सदस्यों ने अपने पत्रों और उच्च न्यायालय में दाखिल हलफनामों में कहा है। परिणाम कथित रूप से 'परीक्षा की गोपनीयता' के नाम पर अध्यक्ष की इच्छा के अनुसार गुप्त रूप से तैयार किए गए और पूरी प्रक्रिया में पारदर्शिता का अभाव था।आयोग के एक सदस्य चौधरी बशीर अहमद परीक्षा प्रक्रिया या अपनाई जाने वाली पद्धति पर विचार में भाग नहीं ले सकते थे, क्योंकि उनका पुत्र भी उन अभ्यर्थियों में से एक था जो परीक्षा देने वाले थे। उन्हें बैठकों में भाग लेने और अपनी राय देने से स्वयं को अलग कर लेना चाहिए था।अधिवक्ता के अनुसार आयोग ने समय पर कोई कार्रवाई नहीं की। आयोग ने यह कहा कि जैसे ही अभ्यर्थियों ने गलत/अस्पष्ट/संदिग्ध प्रश्नों के बारे में शिकायत की और पर्यवेक्षकों ने आयोग का ध्यान आकर्षित किया, तुरंत निर्देश और स्पष्टीकरण जारी किए गए; किंतु वास्तव में ऐसा नहीं किया गया। यहाँ तक कि एकल न्यायाधीश ने भी यह पाया कि आयोग द्वारा दावा किए गए ऐसे सुधारात्मक कदम वास्तव में नहीं उठाए गए थे। इस निष्कर्ष के बावजूद एकल न्यायाधीश द्वारा तथाकथित 'सुधारात्मक उपायों' के आधार पर प्रक्रिया को वैध ठहराना पूर्णतः गलत था।फिर, कथित 'प्रो-राटा पद्धति' केवल उन अभ्यर्थियों पर लागू की गई जो चयनित नहीं हुए थे। इस प्रक्रिया से केवल अचयनित अभ्यर्थियों को लाभ मिला, जो कट-ऑफ अंक प्राप्त नहीं कर सके थे। यह कार्रवाई भेदभावपूर्ण थी और समान परिस्थितियों में स्थित अभ्यर्थियों के साथ अलग-अलग मापदंड अपनाने के समान थी, क्योंकि चयनित अभ्यर्थियों को प्रो-राटा अंकों का लाभ

नहीं दिया गया। दूसरे शब्दों में, अधिवक्ता के अनुसार समान लोगों के साथ असमान व्यवहार किया गया–कुछ को लाभ देकर अन्य को उसी लाभ से वंचित किया गया, जबकि वे भी उसके समान रूप से अधिकारी थे। इस प्रकार, प्रारंभिक परीक्षा आयोजित करने की पूरी प्रक्रिया अवैध, अनुचित, भेदभावपूर्ण तथा संविधान के अनुच्छेद 14, 19 और 21 का उल्लंघन करने वाली थी।

12. जहाँ तक डिवीजन बेंच द्वारा पारित आदेश का संबंध है, यह प्रस्तुत किया गया कि यद्यपि डिवीजन बेंच के समक्ष संवैधानिक महत्व के ऐसे प्रश्न उठाए गए थे जिनके दूरगामी परिणाम हो सकते थे, फिर भी बेंच ने उन्हें उनके उचित दृष्टिकोण से नहीं परखा।यह कहा गया कि डिवीजन बेंच ने संक्षिप्त और अत्यंत संक्षेप आदेश पारित करते हुए लेटर पेटेंट अपीलों को यह कहते हुए खारिज कर दिया कि उसे एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश में हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं मिला।

इन सभी आधारों पर यह तर्क दिया गया कि अपीलों को स्वीकार किया जाना चाहिए, एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश तथा उच्च न्यायालय की डिवीजन बेंच द्वारा उसकी पुष्टि किए गए आदेश को निरस्त किया जाना चाहिए, और आयोग को कानून के अनुसार प्रारंभिक परीक्षा पुनः आयोजित करने का निर्देश दिया जाना चाहिए।

13. दूसरी ओर, आयोग की ओर से उपस्थित अधिवक्ता ने उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश का समर्थन किया। अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि असंतुष्ट रिट-याचिकाकर्ताओं की मूल धारणा यह थी कि निर्णय केवल आयोग के अध्यक्ष द्वारा लिया गया था। रिट-याचिकाकर्ताओं के अनुसार अध्यक्ष के अतिरिक्त केवल तीन सदस्य थे; उनमें से दो आयोग द्वारा स्थिति सुधारने के लिए सुझाई गई पद्धति के विरुद्ध थे और एक सदस्य कार्यवाही में भाग लेने के लिए अयोग्य अथवा अर्हताहीन था। इस प्रकार आयोग केवल अध्यक्ष तक सीमित रह गया, जिसने अपनी इच्छा से पूरी प्रक्रिया संचालित की।

किन्तु वास्तविक स्थिति इससे भिन्न थी। अधिवक्ता के अनुसार अध्यक्ष के अतिरिक्त पाँच सदस्य थे। कुछ निर्णय आयोग द्वारा सर्वसम्मति से लिए गए। कुछ बैठकों में एक सदस्य उपलब्ध नहीं था, परन्तु उसने बाद में उन निर्णयों से सहमति व्यक्त कर दी। अपनाई गई पद्धति को स्वीकृति दी गई, निर्णय लिए गए, अभ्यर्थियों की शिकायतों का निवारण किया गया और उनके हितों की रक्षा की गई। कुछ निर्णयों के संबंध में भले ही सर्वसम्मति नहीं थी, परन्तु बहुमत उपलब्ध था और संबंधित नियमों के अंतर्गत ऐसी कार्रवाई की जा सकती थी। अधिवक्ता ने आगे कहा कि जैसे ही पर्यवेक्षकों का ध्यान कुछ गलत, त्रुटिपूर्ण या संदिग्ध प्रश्नों की ओर गया और उन्होंने आयोग को इसकी सूचना दी, आयोग की ओर से आवश्यक निर्देश दिए गए कि उन प्रश्नों को सुधारा जाए अथवा अनदेखा किया जाए, और ये निर्देश अभ्यर्थियों तक विधिवत पहुँचा दिए गए। यद्यपि माननीय एकल न्यायाधीश ने इस बिंदु पर आयोग के विरुद्ध निष्कर्ष निकाला और कुछ परिणामी निर्देश जारी

किए, फिर भी आयोग ने न्यायालय के प्रति सम्मान तथा छात्र-समुदाय के व्यापक हित में उस निष्कर्ष को स्वीकार कर लिया और उस भाग को डिवीजन बेंच के समक्ष चुनौती नहीं दी। इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि किसी अभ्यर्थी के साथ अन्याय हुआ है।यह भी कहा गया कि जब गलत या संदिग्ध प्रश्नों को हटाने या अनदेखा करने का आदेश दिया गया और उनके अंक शेष सही एवं वैध प्रश्नों में प्रो-राटा आधार पर जोड़ दिए गए, तो इस कदम के विरुद्ध कोई शिकायत नहीं की जा सकती। अधिवक्ता ने कहा कि इससे चयनित अभ्यर्थियों को कोई अन्याय नहीं हुआ। यह निर्विवाद तथ्य है कि पहली परीक्षा प्रारंभिक परीक्षा थी, जिसका उद्देश्य केवल 1:13 के अनुपात में अभ्यर्थियों की शॉर्ट-लिस्टिंग करना था। जो अभ्यर्थी इस परीक्षा को उत्तीर्ण कर लेते हैं, वे दूसरे चरण अर्थात् मुख्य परीक्षा में प्रवेश के लिए पात्र हो जाते हैं। वास्तविक चयन के लिए प्रारंभिक परीक्षा के अंक प्रासंगिक नहीं होते। चयन के लिए मुख्य परीक्षा (लिखित परीक्षा और मौखिक साक्षात्कार) में प्राप्त अंक ही महत्वपूर्ण होते हैं। अतः जो अभ्यर्थी प्रारंभिक परीक्षा में सफल नहीं हो सके, वे यह नहीं कह सकते कि असफल अभ्यर्थियों को प्रो-राटा अंक देने से सफल अभ्यर्थियों के साथ अन्याय हुआ है। यह तर्क केवल न्यायालय को प्रभावित करने के उद्देश्य से दिया गया है, जबकि वास्तव में यह पूरी तरह अप्रासंगिक और निरर्थक है। किसी भी सफल अभ्यर्थी ने यह शिकायत नहीं की कि उसे आयोग द्वारा अपनाई गई प्रो-राटा पद्धति के आधार पर प्रारंभिक परीक्षा में अधिक अंक मिलने चाहिए थे।अधिवक्ता ने यह भी कहा कि आयोग एक संवैधानिक संस्था है और उससे अपेक्षा की जाती है कि

वह अपने अधिकारों का प्रयोग कानून के अनुसार करे। इस उद्देश्य से नियम बनाए गए हैं और उन्हीं नियमों के अनुसार परीक्षा आयोजित की गई। कानून में न तो पुनः परीक्षा का प्रावधान है और न ही अंकों के पुनर्मूल्यांकन का। जब आयोग को गलत या संदिग्ध प्रश्नों के संबंध में शिकायतें प्राप्त हुईं, तब विशेषज्ञों से परामर्श लिया गया, उनके सुझावों पर विचार किया गया और उसके बाद निर्णय लिए गए।पूरा अभिलेख माननीय एकल न्यायाधीश के समक्ष प्रस्तुत किया गया। एकल न्यायाधीश ने अभिलेख का अवलोकन करने और पक्षकारों को सुनने के बाद कुछ निर्देश जारी किए, जिन्हें आयोग ने सहर्ष स्वीकार किया, आवश्यक प्रक्रिया पूरी की और मेरिट-सूची पुनः तैयार की, जिससे कुछ ऐसे अभ्यर्थियों को लाभ मिला जो पहले चयनित नहीं हुए थे। हालाँकि अधिकांश रिट-याचिकाकर्ता मेरिट सूची में बहुत नीचे थे और उनके लिए शॉर्ट-लिस्टिंग प्रक्रिया में योग्य ठहरना संभव नहीं था। इसलिए उन्हें कोई वास्तविक शिकायत करने का वैध आधार नहीं था। उनका एकमात्र प्रयास यह है कि प्रारंभिक परीक्षा को निरस्त कराकर न्यायालय से नई परीक्षा आयोजित कराने का आदेश प्राप्त कर लें, ताकि वे उसमें फिर से सम्मिलित हो सकें।ऐसी कार्रवाई से न केवल आयोग को बल्कि उन अभ्यर्थियों को भी गंभीर हानि और अन्याय होगा जिन्हें प्रारंभिक परीक्षा की शॉर्ट-लिस्टिंग प्रक्रिया में पात्र और योग्य घोषित किया जा चुका है। इन सभी आधारों पर अधिवक्ता ने निवेदन किया कि अपीलों को खारिज कर दिया जाना चाहिए।

14. पक्षकारों के अधिवक्ताओं को सुनने तथा उनके द्वारा प्रस्तुत परस्पर विरोधी तर्कों पर गंभीरतापूर्वक विचार करने के पश्चात्, हमारी राय में

अपीलकर्ताओं ने ऐसा कोई आधार प्रस्तुत नहीं किया है जिससे माननीय एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश, जिसे डिवीजन बेंच ने भी पुष्टि की है, में हस्तक्षेप किया जा सके।जैसा कि उच्च न्यायालय ने कहा है, संयुक्त सेवा (प्रारंभिक) परीक्षा, 2005 का आयोजन जम्मू और कश्मीर लोक सेवा आयोग द्वारा 1 अप्रैल 2005 को अधिसूचित अठारह राजपत्रित सेवाओं के 132 पदों के लिए अभ्यर्थियों के चयन हेतु किया गया था।प्रत्यक्ष भर्ती के लिए अभ्यर्थियों के चयन का आधार संयुक्त प्रतियोगी परीक्षा था। जम्मू और कश्मीर संविधान की धारा 133 की उपधारा (1) के अंतर्गत प्राप्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए आयोग ने "जम्मू और कश्मीर लोक सेवा आयोग (कार्य और प्रक्रिया) नियम, 1980" बनाए।इन नियमों में अन्य बातों के साथ-साथ कार्य संचालन की प्रक्रिया, कोरम, आयोग के निर्णय, कार्यवाही का अभिलेखन (मिनट्स) आदि के संबंध में प्रावधान किए गए हैं।ऐसी परीक्षा आयोजित करने की प्रक्रिया "जम्मू और कश्मीर संयुक्त प्रतियोगी परीक्षा प्रत्यक्ष भर्ती नियम, 1995" द्वारा नियंत्रित होती थी, जिन्हें एस आर ओ 161/ 1995 दिनांक 17 जुलाई 1995 के तहत जारी और अधिसूचित किया गया था। 1995 के नियमों के अनुसार संयुक्त प्रतियोगी परीक्षा दो क्रमिक चरणों में आयोजित की जानी थी:

(i). संयुक्त सेवा (प्रारंभिक) परीक्षा (वस्तुनिष्ठ प्रकार) – मुख्य परीक्षा के लिए अभ्यर्थियों के चयन हेतु (जिसे 'स्क्रीनिंग टेस्ट' कहा गया); और

(ii). संयुक्त सेवा (मुख्य) परीक्षा (लिखित परीक्षा तथा साक्षात्कार) – विभिन्न सेवाओं और पदों के लिए अभ्यर्थियों के चयन हेतु (जिसे 'चयन परीक्षण' कहा गया)।

15. प्रारंभिक परीक्षा में दो प्रश्न-पत्र थे–

(i). सामान्य अध्ययन का अनिवार्य प्रश्न-पत्र, और

(ii). एक वैकल्पिक विषय, जिसे अभ्यर्थी द्वारा नियमों के परिशिष्ट-IX में उल्लिखित 22 निर्दिष्ट वैकल्पिक विषय में से चुना जाता था।प्रारंभिक परीक्षा का उद्देश्य केवल 'स्क्रीनिंग टेस्ट' के रूप में कार्य करना था। इस परीक्षा में अभ्यर्थियों द्वारा प्राप्त अंक केवल उन्हें मुख्य परीक्षा में प्रवेश पाने और योग्य घोषित होने के लिए होते थे; इन अंकों को अंतिम मेरिट सूची या अंतिम चयन निर्धारित करने में नहीं जोड़ा जाना था। प्रारंभिक परीक्षा के आधार पर मुख्य परीक्षा में प्रवेश पाने वाले अभ्यर्थियों की संख्या कुल रिक्तियों की अनुमानित संख्या के 1:13 के अनुपात में रखी जानी थी।

नियमों में यह भी प्रावधान था कि केवल वे ही शॉर्ट-लिस्ट किए गए अभ्यर्थी, जिन्होंने प्रारंभिक परीक्षा में आयोग द्वारा अपने विवेक से निर्धारित न्यूनतम अंक प्राप्त किए हों और जिन्हें आयोग द्वारा प्रारंभिक परीक्षा में योग्य घोषित किया गया हो, उन्हें मुख्य परीक्षा में बैठने की अनुमति दी जाएगी, बशर्ते कि वे अन्यथा उस परीक्षा में प्रवेश के लिए पात्र हों।

16. मुख्य परीक्षा भी दो चरणों में आयोजित की जाती थी–(i) लिखित परीक्षा, और (ii) मौखिक साक्षात्कार । लिखित परीक्षा में परंपरागत निबंधात्मक प्रकार के प्रश्न-पत्र होते थे, जिनमें से एक प्रश्न-पत्र केवल अर्हतात्मक होता था। ये विषय परिशिष्ट-IX में दिए गए थे तथा उनका विस्तृत पाठ्यक्रम परिशिष्ट-IB में निर्धारित था। जिन अभ्यर्थियों ने लिखित परीक्षा में आयोग द्वारा निर्धारित न्यूनतम अर्हता अंक प्राप्त किए होते थे, उन्हें मौखिक साक्षात्कार के लिए 1:3 के अनुपात में बुलाया जाना था, अर्थात् एक पद के लिए तीन अभ्यर्थी।

17. आयोग ने अपने 1 अप्रैल 2005 के अधिसूचना द्वारा जम्मू और कश्मीर संयुक्त प्रतियोगी परीक्षा, 2005 की प्रारंभिक परीक्षा के लिए अभ्यर्थियों से आवेदन आमंत्रित किए। इस विज्ञापन के प्रत्युत्तर में 17,116 अभ्यर्थियों ने आवेदन किया। प्रारंभिक परीक्षा आयोग द्वारा 3 जुलाई 2005 को जम्मू और श्रीनगर में एक साथ 24 केंद्रों पर आयोजित की गई, जिसमें 15,293 अभ्यर्थी सम्मिलित हुए। सामान्य अध्ययन का अनिवार्य प्रश्न-पत्र 150 अंकों का था, जिसमें 120 प्रश्न थे और प्रत्येक प्रश्न के 1.25 अंक थे। जबकि वैकल्पिक विषय (22 विषयों में से) का प्रश्न-पत्र 300 अंकों का था, जिसमें 120 प्रश्न थे और प्रत्येक प्रश्न के 2.5 अंक थे।

18. ऐसा प्रतीत होता है कि प्रारंभिक परीक्षा के दौरान अभ्यर्थियों द्वारा बड़ी संख्या में शिकायतें की गईं कि प्रश्न-पत्रों में कई त्रुटियाँ, गलत मुद्रण, वर्तनी की गलतियाँ, संदिग्ध प्रश्न, दोहरे उत्तर वाले प्रश्न तथा यहाँ तक कि गलत उत्तर वाले प्रश्न भी थे। इन शिकायतों के मद्देनज़र 6 जुलाई

2005 को आयोग ने प्रमुख समाचार-पत्रों तथा इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में एक प्रेस नोट जारी किया, जिसमें अभ्यर्थियों को आश्वस्त किया गया कि परिणाम तैयार करते समय उनकी सभी प्रस्तुतियाँ/शिकायतें/अभ्यावेदन उचित रूप से विचाराधीन की जाएँगी।

19. सुविधा के लिए प्रेस नोट का पाठ पुनः प्रस्तुत किया जाता है :

"कुछ अभ्यर्थियों, जिन्होंने दिनांक 03.07.2005 को आयोजित जम्मू एवं कश्मीर संयुक्त प्रतियोगी (प्रारंभिक) परीक्षा, 2005 में भाग लिया था, ने कुछ विषयों के प्रश्नों से संबंधित मुद्रण त्रुटियों/विसंगतियों के कुछ उदाहरण आयोग के संज्ञान में लाए हैं। आयोग ने इन अभ्यावेदनों का संज्ञान लिया है तथा जहाँ आवश्यक समझा गया, वहाँ संबंधित क्षेत्रों के विशेषज्ञों से भी परामर्श किया है। आयोग अभ्यर्थियों को यह आश्वस्त करना चाहता है कि उनकी उत्तर-पत्रिकाओं के मूल्यांकन के समय ऐसे अभ्यावेदनों पर उचित विचार किया जाएगा।"

20. इसके अगले ही दिन, अर्थात् 7 जुलाई 2005 को, आयोग की एक बैठक आयोजित की गई, जिसमें इसके अध्यक्ष श्री एम. एस. पंडित, श्री एम. एस. खान, श्री सी. एल. बंसल, चौधरी बशीर अहमद तथा डॉ. एन. ए. जान उपस्थित थे। प्रोफेसर बी. के. टीकू (एक सदस्य) उस दिन उपलब्ध नहीं थे, इसलिए वे बैठक में उपस्थित नहीं हो सके।

बैठक में इस मुद्दे पर विस्तार से चर्चा की गई और प्राप्त अभ्यावेदनों के आलोक में एक योजना तैयार की गई। आयोग ने सर्वसम्मति से

निर्णय लिया कि जिन प्रश्नों के गलत होने की पुष्टि हो गई है, उन्हें प्रश्नपत्र से हटा दिया जाए तथा हटाए गए प्रश्नों के अंक शेष प्रश्नों में अनुपातिक (प्रो-राटा) रूप से जोड़ दिए जाएँ, ताकि अभ्यर्थियों को किसी प्रकार की हानि या पूर्वाग्रह न हो। आयोग के निर्णय का संबंधित अंश, साथ ही बैठक में भाग लेने वाले सदस्यों के नाम, इस प्रकार हैं:

श्री/गण:

1.एम. एस. पंडित

2.एम. एस. खान

3.सी. एल. बंसल

4.चौ. बशीर अहमद

5.डॉ. एन. ए. जान

“केएएस/ संयुक्त सेवा प्रतियोगी परीक्षा, 2005 दिनांक 3 जुलाई 2005 को 24 केंद्रों तथा जम्मू और श्रीनगर के विभिन्न शहरों में स्थित अनेक उप-केंद्रों पर आयोजित की गई थी। परीक्षा के दौरान अनेक अभ्यर्थियों ने यह अभ्यावेदन प्रस्तुत किया कि सामान्य अध्ययन प्रश्नपत्र तथा वैकल्पिक विषयों के प्रश्नपत्रों में कई प्रकार की त्रुटियाँ थीं, जैसे–

गलत प्रश्न,अस्पष्ट या दिशाहीन प्रश्न,प्रश्नों की पुनरावृत्ति, आदि। एक प्रेस विज्ञप्ति के माध्यम से अभ्यर्थियों को आश्वस्त किया गया कि उनके अभ्यावेदनों पर विषय-विशेषज्ञों से परामर्श करके विचार किया जाएगा और उत्तर-पुस्तिकाओं के मूल्यांकन तथा अंक प्रदान करने में

आवश्यक समायोजन किया जाएगा।तदनुसार, अब तक प्राप्त अभ्यावेदनों के आधार पर विभिन्न संस्थानों/विश्वविद्यालयों के विशेषज्ञों तथा विभागाध्यक्षों से अनुरोध किया गया कि वे सामान्य अध्ययन और संबंधित वैकल्पिक प्रश्नपत्रों की समीक्षा करें।उनकी जांच और सिफारिशों के आधार पर प्रश्नों की संख्या तथा प्रश्नपत्रों के अधिकतम अनुमेय अंकों के अंतर्गत दिए जाने वाले अंकों में आवश्यक समायोजन किया गया।आयोग ने ऐसे अभ्यावेदनों के आधार पर आवश्यक समायोजन करने की प्रक्रिया को भी अनुमोदित किया।"

21. इसके पश्चात आयोग को कुछ असंतुष्ट अभ्यर्थियों से भी अभ्यावेदन प्राप्त हुए। दिनांक 11 जुलाई, 2005 को आयोग की एक असाधारण बैठक बुलाई गई, जिसमें यह निर्णय लिया गया कि प्रारंभिक परीक्षा में सम्मिलित हुए सभी अभ्यर्थियों का परिणाम तैयार किया जाए, जिसमें सामान्य अध्ययन तथा वैकल्पिक विषयों में प्राप्त अंकों को अलग-अलग दर्शाया जाए, और उक्त परिणाम को औपचारिक स्वीकृति के लिए आयोग के समक्ष प्रस्तुत किया जाए।इसके पश्चात विभिन्न श्रेणियों के अभ्यर्थियों को मुख्य परीक्षा में सम्मिलित होने के लिए बुलाया जाए।आयोग के अध्यक्ष तथा सभी पाँच सदस्यों ने बैठक में भाग लिया और निम्नलिखित निर्णय लिया:

श्री / गण:

1. एम. एस. पंडित
2. एम. एस. खान

3 .सी. एल. बंसल

4 .प्रो. बी. के. टीकू

5 .चौ. बशीर अहमद

6..डॉ. एन. ए. जान

“आइटम संख्या 1 : जम्मू एवं कश्मीर संयुक्त प्रतियोगी (प्रारंभिक) परीक्षा, 2005 के संबंध में।

हाल ही में आयोजित संयुक्त सेवा प्रतियोगी (प्रारंभिक) परीक्षा, 2005 के सामान्य अध्ययन तथा वैकल्पिक प्रश्नपत्रों में पाई गई अनियमितताओं के संबंध में और अधिक अभ्यावेदन प्राप्त हुए। इन अभ्यावेदनों की जाँच संबंधित विषयों के परीक्षकों और विषय-विशेषज्ञों से परामर्श कर की गई।इस विषय में आयोग में पूर्व में की गई चर्चा के अनुरूप आवश्यक कार्रवाई करने को अनुमोदित किया गया।

यह भी निर्णय लिया गया कि परीक्षा में सम्मिलित हुए सभी अभ्यर्थियों का परिणाम तैयार किया जाए, जिसमें सामान्य अध्ययन तथा वैकल्पिक प्रश्नपत्रों में प्राप्त अंकों को पृथक-पृथक दर्शाया जाएगा।इस परिणाम को सामान्य सूचना हेतु अधिसूचित करने से पूर्व आयोग की औपचारिक स्वीकृति के लिए प्रस्तुत किया जाएगा।इसके पश्चात विभिन्न श्रेणियों के उन अभ्यर्थियों की संक्षिप्त सूची तैयार की जाएगी जिन्हें मुख्य परीक्षा में सम्मिलित होने के लिए बुलाया जाएगा।”

22. उपर्युक्त निर्णयों से यह स्पष्ट है कि यद्यपि दिनांक 7 जुलाई, 2005 की बैठक में प्रो. बी. के. टीकू उपस्थित नहीं थे, किन्तु 11 जुलाई, 2005 को बुलाई गई अगली बैठक में वे भी उपस्थित थे और आयोग द्वारा सर्वसम्मति से निर्णय लिया गया।

23. दिनांक 12 जुलाई, 2005 को पुनः एक बैठक बुलाई गई जिसमें अध्यक्ष तथा पाँचों सदस्यों सहित सभी छह सदस्य उपस्थित थे। उस दिन आयोग ने जम्मू और कश्मीर संयुक्त प्रतियोगी (प्रारंभिक) परीक्षा, 2005 के परिणाम को औपचारिक रूप से सर्वसम्मति से अनुमोदित किया। उक्त निर्णय इस प्रकार है:

> "आयोग ने 3 जुलाई, 2005 को आयोजित जम्मू एवं कश्मीर संयुक्त प्रतियोगी परीक्षा, 2005 के परिणाम को अनुमोदित किया तथा यह अपेक्षा व्यक्त की कि परिणाम को मुद्रित मीडिया में प्रकाशित किया जाए तथा आयोग की वेबसाइट पर भी प्रदर्शित किया जाए।यह भी उल्लेख किया गया कि परिणाम तैयार करते समय अभ्यर्थियों से प्राप्त अभ्यावेदनों पर उचित विचार किया गया है।"

24. याचिकाकर्ता प्रारंभिक परीक्षा की स्क्रीनिंग प्रक्रिया में सफल नहीं हो सके क्योंकि वे आवश्यक अंक प्राप्त नहीं कर पाए। प्रतियोगिता से बाहर किए जाने तथा मुख्य परीक्षा में प्रवेश न मिलने से असंतुष्ट होकर उन्होंने उच्च न्यायालय में रिट याचिकाएँ दायर कीं।

25. अभिलेख की पूर्णता के लिए यह उल्लेखनीय है कि 14 जुलाई, 2005 को आयोग की एक बैठक आयोजित हुई जिसमें एक सदस्य (डॉ. एन.

ए. जान) ने यह कहा कि उन्होंने 7 जुलाई, 2005 के निर्णय के अनुसार विभिन्न प्रश्नों को हटाने के लिए सहमति दी थी।किन्तु उन्हें अभ्यर्थियों से प्राप्त अभ्यावेदनों के संबंध में आयोग द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया के बारे में आपत्ति/आरक्षण था। इस संबंध में प्रो. बी. के. टीकू ने भी उनका समर्थन किया और आयोग द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया पर आपत्ति व्यक्त की। उक्त बैठक का संबंधित अंश इस प्रकार है:

> "आइटम संख्या 11.1: आयोग की 10वीं बैठक (दिनांक 07.07.2005) की कार्यवाही की पुष्टि।
>
> बैठक की कार्यवाही की पुष्टि की गई, इस टिप्पणी के साथ कि माननीय सदस्य डॉ. एन. ए. जान ने यह कहा कि यद्यपि उन्होंने आयोग के समक्ष प्रस्तुत किए गए विभिन्न प्रश्नों को हटाने से सहमति व्यक्त की थी, तथापि जम्मू एवं कश्मीर संयुक्त सेवा प्रतियोगी (प्रारंभिक) परीक्षा, 2005 के विभिन्न प्रश्नपत्रों के संबंध में अभ्यर्थियों से प्राप्त अभ्यावेदनों से निपटने के लिए अपनाई गई प्रक्रिया के बारे में उनकी आपत्तियाँ/आरक्षण अभिलेख पर दर्ज किए जाएँ।इस संबंध में प्रो. बी. के. टीकू ने भी उनका समर्थन किया। हालाँकि, उन्होंने आयोग द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया के संबंध में अपनी विशिष्ट आपत्ति क्या थी, इसका उल्लेख नहीं किया।

26. आयोग की ओर से यह तर्क दिया गया कि प्रारंभ में दोनों सदस्यों, अर्थात प्रो. बी. के. टीकू और डॉ. एन. ए. जान, ने आयोग द्वारा त्रुटियों को दूर करने के लिए अपनाई गई पद्धति से सहमति व्यक्त की थी और उसे अपनी स्वीकृति भी प्रदान की थी। किन्तु बाद में उन्होंने अपने

पूर्व रुख से यू-टर्न (विपरीत रुख) अपनाया और आयोग द्वारा आगे की जाने वाली प्रक्रिया से स्वयं को अलग करने का निर्णय लिया। दिनांक 26 जुलाई, 2005 को आयोग के अध्यक्ष को डॉ. जान द्वारा प्रस्तुत एक नोट प्राप्त हुआ, जिसमें यह कहा गया था:

> "कृपया दिनांक 07.07.2005 और 14.07.2005 को आयोजित आयोग की 10वीं तथा 11वीं बैठकों की कार्यवाही का संदर्भ लिया जाए, जिसमें आई.ए.एस. (प्रारंभिक) परीक्षा के सामान्य अध्ययन तथा वैकल्पिक प्रश्नपत्रों में गलत उत्तर, गलत प्रश्न, दिशाहीन प्रश्न, प्रश्नों की पुनरावृत्ति तथा संदिग्ध उत्तर-कुंजी के संबंध में आवश्यक सुधार/हटाने के लिए अपनाई गई प्रक्रिया/ काम करने का ढंग पर परिणाम घोषित किए जाने से पहले कई बार चर्चा की गई थी।

"मैंने ये टिप्पणियाँ 03 जुलाई 2005 को परीक्षा समाप्त होने के तुरंत बाद से ही विभिन्न परीक्षा केंद्रों पर नियमित रूप से उठाई थीं। अतः उपर्युक्त विषय से संबंधित पूरी प्रक्रिया निर्धारित प्रक्रिया/मानकों के अनुरूप नहीं थी। त्रुटियों के सुधार के लिए अपनाई गई प्रक्रिया का समुचित पालन नहीं किया गया तथा मानक प्रक्रिया भी नहीं अपनाई गई।

इसलिए इस प्रक्रिया के दौरान अपनाए गए मोडस ऑपरेंडी (कार्य-पद्धति) से मैं सहमत नहीं था।वास्तविक रूप से, जिन परीक्षकों ने प्रश्नपत्र तैयार किए थे, उन्हें संबंधित विषय के स्थानीय वरिष्ठ विशेषज्ञों के साथ बुलाया जाना चाहिए था, जो कम से कम विश्वविद्यालय के प्रोफेसर स्तर के हों, और उन्हें इन दस्तावेजों की स्वतंत्र रूप से समीक्षा

करने की अनुमति दी जानी चाहिए थी।विशेषज्ञों को कोई संदर्भ पुस्तकें) उपलब्ध नहीं कराई गईं, जबकि यह अपेक्षा नहीं की जा सकती कि कोई विशेषज्ञ किसी विषय की सभी संबंधित शाखाओं में पूर्ण रूप से पारंगत हो। जब विशेषज्ञों के पास पाठ्य-पुस्तक या संदर्भ पुस्तकें उपलब्ध नहीं थीं, तब अधिकांश मामलों में केवल वर्तनी संबंधी त्रुटियों को ही ध्यान में लिया गया।इसके अतिरिक्त, भ्रमित करने वाले प्रश्नों के कारण अभ्यर्थियों का बहुत समय व्यर्थ हुआ, जिसके परिणामस्वरूप अभ्यर्थियों ने समय की हानि तथा एकाग्रता में कमी की शिकायत की। इस कारण अधिकांश अभ्यर्थियों को नुकसान हुआ, जबकि इसमें उनकी कोई गलती नहीं थी और उन्हें इसके लिए पर्याप्त रूप से प्रतिपूरित भी नहीं किया गया।

अधिकांश विषयों, जिनमें सामान्य अध्ययन तथा वैकल्पिक प्रश्नपत्र भी शामिल हैं, के संबंध में बड़े पैमाने पर शिकायतें प्राप्त हुईं–जैसे मुद्रण त्रुटियाँ, गलत उत्तर, त्रुटिपूर्ण उत्तर-कुंजी, पाठ्यक्रम से बाहर के प्रश्न, प्रश्नों की पुनरावृत्ति तथा भ्रमित करने वाले प्रश्न। इसके परिणामस्वरूप अभ्यर्थी प्रश्नों को उस प्रकार हल करने की स्थिति में नहीं थे, जिस प्रकार सामान्यतः किया जा सकता था। परिणाम को अंतिम रूप देने से पहले मैंने कई बार यह इंगित किया था कि इतने व्यापक परिवर्तन को देखते हुए उन सभी प्रश्नपत्रों के लिए पुनः परीक्षा आयोजित करना अधिक उचित होगा जो त्रुटिपूर्ण थे।

मैंने यह भी सुझाव दिया था कि जो अभ्यर्थी अपनी शिकायतें प्रस्तुत करना चाहते हैं, उन्हें परीक्षा की तिथि (03.07.2005) से कम से कम

पंद्रह दिन का समय दिया जाना चाहिए।मैंने यह भी सुझाव दिया था कि जिन प्रश्नपत्रों के संबंध में कोई अभ्यावेदन प्राप्त नहीं हुआ है, उनकी भी जाँच की जानी चाहिए, ताकि सभी संदेह दूर हो सकें। किन्तु दुर्भाग्यवश मेरे सभी सुझावों को न केवल अनदेखा किया गया, बल्कि उन्हें पूरी तरह नज़रअंदाज़ कर दिया गया।इसके अतिरिक्त, परीक्षा नियमों में संशोधन के कारण परीक्षा प्रक्रिया में किसी सदस्य की कोई भूमिका नहीं रह गई है, अतः परिणाम की घोषणा केवल एक औपचारिकता बनकर रह गई है।परीक्षा प्रणाली में सुधार के लिए महाराष्ट्र राज्य मॉडल अपनाने का मेरा सुझाव भी, जिसे मैं फरवरी 2005 से उठाता आ रहा था, अस्वीकार कर दिया गया। उपरोक्त परिस्थितियों को देखते हुए, मैं केएएस परीक्षा की प्रक्रिया से स्वयं को अलग करता हूँ, सिवाय इसके कि यादृच्छिक रूप से हटाए गए प्रश्नों की संख्या को अभिलेख में दर्ज कर दिया गया है।

हस्ताक्षरित -
(डॉ. एन. ए. जान)"

27. इस बीच, दिनांक 14 जुलाई, 2005 की बैठक की कार्यवाही को आयोग ने 26 जुलाई, 2005 को बहुमत से अनुमोदित कर दिया।दिनांक 28 जुलाई, 2005 को आयोग के अध्यक्ष ने उपर्युक्त संदर्भित डॉ. जान द्वारा प्रस्तुत नोट पर अपनी टिप्पणियाँ दर्ज कीं और कहा:

“यह स्पष्ट रूप से बाद में किया गया विचार प्रतीत होता है, क्योंकि प्रारंभिक परीक्षा के कुछ प्रश्नपत्रों में पाई गई त्रुटियों/विसंगतियों के संबंध में प्राप्त अभ्यावेदनों से निपटने की पद्धति पर आयोग ने 07.07.2005 तथा 11.07.2005 को आयोजित बैठकों में विस्तार से विचार-विमर्श किया था, जिनमें डॉ. जान उपस्थित थे।

उनके द्वारा कुछ प्रश्नपत्रों के संबंध में (हस्तलिखित पृष्ठों में) जो त्रुटियाँ इंगित की गई थीं, जिनमें भूगोल विषय भी शामिल था और जिनकी एक लंबी सूची थी, उन पर विस्तृत चर्चा की गई तथा संबंधित परीक्षक और विशेषज्ञ से परामर्श किया गया।

इस प्रक्रिया के आधार पर जिन प्रश्नों को हटाया जाना था, उन्हें संक्षिप्त कार्यवृत्त में दर्ज किया गया, जिन पर माननीय सदस्य के हस्ताक्षर भी थे।हटाए गए प्रश्नों के संबंध में अभ्यर्थियों को राहत देने की विधि भी उक्त बैठकों की कार्यवाही में परिलक्षित होती है, जिन्हें बाद में अनुमोदित भी कर दिया गया।माननीय सदस्य 12.07.2005 को आयोजित उस बैठक में भी उपस्थित थे, जिसमें प्रारंभिक परीक्षा के परिणामों के प्रकाशन/प्रसार की अनुमति प्रदान की गई थी।

केवल 14.07.2005 को ही डॉ. जान ने पहली बार अपना असहमति मत व्यक्त किया। यहाँ तक कि उस बैठक में भी उन्होंने अपनी आपत्तियों के संबंध में कोई स्पष्ट विवरण प्रस्तुत नहीं किया, और यही स्थिति उस बैठक की कार्यवाही में भी परिलक्षित होती है।

असहमति का यह नोट 20.07.2005 को, अर्थात परिणाम घोषित होने के काफी समय बाद दर्ज किया गया, और इसमें ऐसे कोई विशिष्ट बिंदु नहीं हैं जिन पर इस चरण में कोई कार्रवाई की जा सके, विशेषकर तब जब इस विषय के सभी पहलुओं, जिनमें माननीय सदस्य द्वारा सुझाए गए विकल्प भी शामिल हैं, पर पहले ही विचार किया जा चुका है।

कुछ विषयों में पुनः परीक्षा आयोजित करने के विकल्प को इस कारण अस्वीकार कर दिया गया कि कुछ प्रश्नों में समायोजन करने के बाद कोई असमानता शेष नहीं रही थी। अतः अत्यधिक खर्च और प्रयास के साथ पुनः परीक्षा आयोजित करना जनहित के प्रतिकूल होता।

उल्लेखनीय है कि नोट में 'प्रश्नों की त्रुटिपूर्ण उत्तर-कुंजी)' का भी उल्लेख किया गया है। मुझे आश्चर्य है कि माननीय सदस्य इस निष्कर्ष पर कैसे पहुँचे, क्योंकि आयोग में (परीक्षा नियमों के अंतर्गत अधिकृत व्यक्तियों को छोड़कर) और आयोग के बाहर किसी भी व्यक्ति को उत्तर-कुंजी तक कोई पहुँच नहीं थी और न ही है।अतः इस संबंध में किया गया कोई भी उल्लेख किसी पूर्वधारणा पर आधारित प्रतीत होता है, जो स्पष्टतः उचित नहीं है।

जहाँ तक महाराष्ट्र राज्य मॉडल का संबंध है, माननीय सदस्य द्वारा उठाए गए इस बिंदु पर आयोग ने अपनी लंबी बैठकों के दौरान विचार किया था, जिनमें परीक्षा नियमों को अंतिम रूप दिया गया था।कृपया इन टिप्पणियों को अभिलेख पर रखा जाए।

हस्ताक्षरित -

अध्यक्ष"

28. 8 अगस्त 2005 को आयोग के एक अन्य सदस्य (प्रो. बी.के. टिक्कू) ने भी आयोग के अध्यक्ष को एक नोट भेजा, जो इस प्रकार था–

"यह 7 जुलाई 2005 तथा 14 जुलाई 2005 को आयोजित 10वीं और 11वीं बैठकों की कार्यवाही (मिनट्स) के संदर्भ में है, जिनमें KAS (प्रारंभिक परीक्षा) के सामान्य अध्ययन तथा वैकल्पिक विषयों के प्रश्नपत्रों में आवश्यक सुधार/विलोपन करने की प्रक्रिया पर चर्चा की गई थी। यह चर्चा गलत उत्तरों, गलत प्रश्नों तथा संबंधित विषयों की संदिग्ध उत्तर-कुंजी के संबंध में परिणाम घोषित होने से पहले कई बार की गई थी।

मैंने 3 जुलाई 2005 से ही, परीक्षा समाप्त होने के तुरंत बाद, नियमित रूप से इन आपत्तियों को उठाया था और मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि उपर्युक्त विषय से संबंधित पूरी प्रक्रिया निर्धारित प्रक्रिया/मानकों के अनुसार नहीं थी। सुधार करने के लिए अपनाई गई प्रक्रिया का ठीक प्रकार से पालन नहीं किया गया।

अध्यक्ष ने प्रश्नों को हटाने के लिए अपने विवेक से एक मानदंड अपना लिया, जिसका कारण केवल उन्हें ही ज्ञात है। इसलिए प्रक्रिया के दौरान अपनाए गए इस कार्य-विधान से मैं सहमत नहीं था।

वास्तविक व्यवहार में, जिन परीक्षकों ने प्रश्नपत्र तैयार किए थे, उन्हें स्थानीय वरिष्ठ विशेषज्ञों के साथ–जो संबंधित विषय में विश्वविद्यालय के कम से कम प्रोफेसर स्तर के हों– बुलाया जाना

चाहिए था और उन्हें इन दस्तावेजों की समीक्षा करने की पूरी स्वतंत्रता दी जानी चाहिए थी। जब भी इस विषय पर चर्चा होती थी, मैं हर बार इस बात पर जोर देता था।

मैं इस बिंदु पर इसलिए जोर देता रहा क्योंकि मुझे शिक्षक के रूप में 35 वर्षों का अनुभव है और लगभग दो दशकों तक देश के अनेक विश्वविद्यालयों में विशेषज्ञ परीक्षक के रूप में कार्य करने का अनुभव भी है।

अधिकांश विषयों, जिनमें सामान्य अध्ययन और वैकल्पिक प्रश्नपत्र भी शामिल हैं, के संबंध में बड़ी संख्या में शिकायतें प्राप्त हुई थीं– जैसे मुद्रण त्रुटियाँ, गलत उत्तर, दोषपूर्ण उत्तर-कुंजी, पाठ्यक्रम से बाहर के प्रश्न और भ्रमित करने वाले प्रश्न। इसके परिणामस्वरूप संभव है कि अभ्यर्थी प्रश्नों को सामान्यतः जिस प्रकार हल करते, उस प्रकार हल करने की स्थिति में न रहे हों।

परिणाम को अंतिम रूप देने से पहले मैंने कई बार इस बात पर जोर दिया था कि चूँकि बड़े पैमाने पर परिवर्तन आवश्यक हैं, इसलिए कम से कम उन प्रश्नपत्रों के लिए पुनः परीक्षा आयोजित करना उचित होगा जो काफी हद तक दोषपूर्ण थे।

मुझे दृढ़तापूर्वक यह महसूस होता है कि त्रुटियों को सुधारने के लिए अपनाई गई प्रक्रिया बिल्कुल भी निष्पक्ष नहीं है और संभव है कि इसके कारण बड़ी संख्या में अभ्यर्थियों के साथ, उनकी कोई गलती न होते हुए भी, अन्याय हुआ हो।

आज, 5 अगस्त 2005 को दोपहर 3:30 बजे आयोग की बैठक आयोजित हुई जिसमें प्रतियोगी परीक्षा (KAS प्रारंभिक) के परिणाम को स्वीकृति देने का प्रस्ताव था। परिणाम की एक प्रति सदस्यों के बीच अनुमोदन हेतु वितरित की गई, किंतु मैंने उस पर हस्ताक्षर नहीं किए क्योंकि मैं उस कार्य-विधान को स्वीकृति नहीं देता, जो मुझे प्रश्नपत्रों की त्रुटियों को सुधारने के लिए बिल्कुल भी उचित नहीं प्रतीत होता, जैसा कि ऊपर विस्तार से बताया गया है।

परिणाम की प्रति को स्वीकृति न देने और उस पर हस्ताक्षर न करने का मेरा निर्णय मेरी अंतरात्मा के अनुसार है, जिसने मुझे उपर्युक्त तथ्यों को देखते हुए इस परीक्षा के परिणाम की घोषणा के लिए अपनी स्वीकृति देने की अनुमति नहीं दी।

कृपया इसे आज दिनांक 5 अगस्त 2005 को आयोजित आयोग की बैठक की कार्यवाही में दर्ज किया जाए।"

हस्ताक्षरित -
(प्रो. बी.के. टिक्कू)

29. आयोग के अध्यक्ष ने उक्त नोट पर अपनी टिप्पणियाँ इस प्रकार दर्ज कीं:

"माननीय सदस्य ने, अपने ही ज्ञात कारणों से, केएएस (प्रारंभिक) परीक्षा की परीक्षा-प्रक्रिया से स्वयं को अलग कर लिया, परंतु इसके लिए कोई ठोस या उचित कारण निर्दिष्ट नहीं किया। इसका उल्लेख आयोग की उस बैठक की कार्यवाही में भी है, जिसे पहले ही अनुमोदित

किया जा चुका है।केवल तब, जब उनसे अपनी आपत्तियाँ लिखित रूप में प्रस्तुत करने का अनुरोध किया गया, तब उन्होंने यह नोट लिखा। वर्तमान नोट में, अन्य बातों के साथ, उन्होंने यह भी उल्लेख किया है कि उत्तर-कुंजी के संदिग्ध होने का प्रश्न भी चर्चा में आया था।वास्तव में, माननीय सदस्यों सहित किसी भी व्यक्ति अथवा परीक्षार्थी को संबंधित विषयों के परीक्षकों द्वारा तैयार की गई उत्तर-कुंजी तक कोई पहुँच नहीं थी। अतः इस संबंध में उठाई गई कोई भी शंका स्पष्ट रूप से पूर्वाग्रहपूर्ण तथा पूर्वनिर्धारित मानसिकता को दर्शाती है।किसी भी स्थिति में, आयोग ने–चार सदस्यों और अध्यक्ष की उपस्थिति में–प्रश्नपत्रों में पाई गई त्रुटियों से निपटने के लिए एक तर्कसंगत कार्य-पद्धति अपनाते हुए एक सचेत निर्णय लिया और 10 जुलाई 2005 तक अभ्यर्थियों द्वारा प्रस्तुत अभ्यावेदनों पर समुचित और न्यायोचित विचार करने के बाद प्रारंभिक परीक्षा के परिणाम को अंतिम रूप से स्वीकार किया।

इस नोट को अभिलेख पर रखा जाए।

हस्ताक्षरित -

अध्यक्ष

30. चूँकि दोनों असहमत सदस्यों ने यह चाहा कि उनके असहमति वाले विचार आयोग की ओर से न्यायालय में दाखिल किए जाने वाले आपत्तियों/प्रतिउत्तर में परिलक्षित किए जाएँ, इसलिए इस विषय को आयोग की 12 सितम्बर, 2005 को आयोजित असाधारण बैठक के समक्ष रखा गया। इस बैठक में अध्यक्ष के अतिरिक्त तीन सदस्य

उपस्थित थे, जिनमें वे दोनों सदस्य भी शामिल थे जिन्होंने असहमति-नोट प्रस्तुत किया था, अर्थात् प्रो. बी.के. टिकू और डॉ. एन.ए. जान । बैठक में निम्नलिखित निर्णय लिया गया:

श्रीमान:

1. एम.एस. पंडित
2. प्रो. बी.के. टिकू
3. चौधरी बशीर अहमद
4. डॉ. एन.ए. जान

बैठक में लिया गया निर्णय निम्नानुसार पुनरुत्पादित किया जाता है:

उच्च न्यायालय में दायर मामलों– कुलदीप कुमार एवं अन्य बनाम जम्मू-कश्मीर राज्य एवं अन्य, रविंदर सिंह साहि बनाम जम्मू-कश्मीर राज्य एवं अन्य, तथा शिव गंडोत्रा बनाम जम्मू-कश्मीर राज्य एवं अन्य–में दाखिल आपत्तियाँ और शपथपत्र भी आयोग के सदस्यों के बीच प्रसारित किए गए थे और बैठक के दौरान उन पर चर्चा की गई।माननीय सदस्यों प्रो. बी.के. टिकू और डॉ. एन.ए. जान ने कुछ प्रश्नपत्रों में त्रुटियों/विसंगतियों के संबंध में प्रस्तुत अभ्यावेदनों के निपटारे के लिए अपनाई गई पद्धति के संबंध में अपनी आपत्तियों/आरक्षणों को पुनः दोहराया। उन्होंने यह भी चाहा कि इन आरक्षणों को आयोग की ओर से दायर की जाने वाली आपत्ति/प्रतिउत्तर में परिलक्षित किया जाए।माननीय सदस्यों को यह अवगत कराया गया कि यद्यपि उनकी टिप्पणियाँ पहले ही अभिलेख पर ली जा चुकी हैं, तथापि आयोग द्वारा

लिए गए निर्णय के आधार पर माननीय न्यायालय के समक्ष दाखिल किए गए अथवा किए जाने वाले शपथपत्रों में किसी व्यक्तिगत सदस्य द्वारा उठाई गई आपत्तियों को स्थान नहीं दिया जा सकता।

31. 13 सितम्बर, 2005 को प्रो. बी.के. टिकू और डॉ. एन.ए. जान ने एक बार फिर सचिव को एक नोट भेजा, जिसमें उन्होंने अपनी असहमति को पुनः दोहराया और इस बात पर जोर दिया कि आयोग द्वारा न्यायालय में दाखिल किए जाने वाले उत्तर में उनके असहमति के विचारों को भी दर्शाया जाना चाहिए।15 सितम्बर, 2005 को आयोग ने पुनः इस विषय पर चर्चा की और न्यायालय में दाखिल किए जाने वाले प्रत्युत्तर-शपथपत्र को अनुमोदित किया। इस बैठक में अध्यक्ष सहित उपर्युक्त पाँच सदस्य उपस्थित थे और निम्नलिखित निर्णय लिया गया–

"यह स्पष्ट किया गया कि इस मामले में आपत्तियाँ और शपथपत्र उसी प्रकार तैयार किए गए हैं जैसे इसी प्रकार की अन्य रिट याचिका मामलों में आपत्तियाँ और शपथपत्र तैयार किए गए थे तथा जिन्हें पहले ही सदस्यों के बीच प्रसारित किया जा चुका है। अतः वही शपथपत्र सचिव के हस्ताक्षर से दाखिल किया जाना चाहिए।"

32. माननीय एकल न्यायाधीश के समक्ष व्यापक रूप से दो प्रश्न उठाए गए थे–(1) दो प्रश्नपत्रों, अर्थात् (i) सामान्य अध्ययन और (ii) वैकल्पिक विषय में कई प्रकार की गलतियाँ और त्रुटियाँ थीं। कुछ प्रश्न स्वयं ही गलत थे, कुछ प्रश्नों के उत्तर गलत/अस्पष्ट/द्विअर्थी थे या एक से अधिक सही उत्तर थे। परिणामस्वरूप अभ्यर्थी उन प्रश्नों को सही प्रकार

से समझने की स्थिति में नहीं थे, जिससे वे प्रतिकूल स्थिति में आ गए और बिना किसी गलती के उन्हें नुकसान उठाना पड़ा। ऐसी कार्यवाही को विधि के अनुरूप नहीं कहा जा सकता और इसलिए परीक्षा को निरस्त किया जाना चाहिए था।(2) आयोग ने परीक्षा नियमों तथा प्रक्रियात्मक नियमों का पालन नहीं किया। साथ ही आयोग द्वारा लिया गया निर्णय वास्तव में 'आयोग का निर्णय' नहीं कहा जा सकता और आयोग द्वारा आयोजित परीक्षा विधि के अनुरूप नहीं थी।

33. दूसरी ओर, आयोग का यह पक्ष था कि परीक्षा आयोजित करते समय संबंधित नियमों का कड़ाई से पालन किया गया। जो प्रश्न गलत थे, जिनके एक से अधिक उत्तर थे या जो प्रश्न पर्याप्त रूप से स्पष्ट नहीं थे, उन्हें पूरी तरह से हटा दिया गया। उन प्रश्नों के लिए निर्धारित अंक प्रो-राटा (अनुपातिक रूप से) शेष प्रश्नों में जोड़ दिए गए। यह निर्णय आयोग द्वारा सर्वसम्मति से लिया गया था और वह भी विशेषज्ञों की राय प्राप्त करने के बाद। इसलिए यह कहना सही नहीं था कि यह निर्णय आयोग का नहीं था।विभिन्न निर्णयों तथा अपनाई गई कार्यप्रणाली के संबंध में यह भी प्रस्तुत किया गया कि 1980 के नियमों के अंतर्गत आयोग द्वारा निर्धारित प्रक्रिया का पालन किया गया था और याचिकाकर्ताओं का यह तर्क भी सही नहीं था। अतः याचिकाएँ खारिज किए जाने योग्य थीं।

34. जहाँ तक आयोग के निर्णय का संबंध है, माननीय एकल न्यायाधीश ने इस विषय पर विस्तार से विचार किया। उनके अनुसार, जिस मूल आधार पर रिट याचिकाकर्ताओं ने आयोग की कार्रवाई को चुनौती दी

थी, वह न तो ठोस था और न ही तथ्यात्मक रूप से सही। रिट याचिकाकर्ताओं के अनुसार सभी निर्णय उस बैठक में लिए गए थे जिसमें केवल चार सदस्य उपस्थित थे, अर्थात् अध्यक्ष और तीन सदस्य। उनके अनुसार, दो सदस्य अपनाई गई पद्धति (जिसे विभिन्न निर्णयों में कार्यप्रणाली कहा गया है) से सहमत नहीं थे क्योंकि वे इसके विरुद्ध थे। रिट याचिकाकर्ताओं के अनुसार तीसरे सदस्य चौधरी बशीर अहमद उस बैठक में भाग लेने और अपनी राय व्यक्त करने के लिए पात्र और योग्य नहीं थे, क्योंकि उनका पुत्र प्रारंभिक परीक्षा का एक अभ्यर्थी/प्रतियोगी था। इस प्रकार पूरी निर्णय-प्रक्रिया वस्तुतः केवल आयोग के अध्यक्ष के एकमात्र निर्णय पर निर्भर रह गई।ऐसी स्थिति में, किसी भी प्रकार से इस निर्णय को आयोग का निर्णय नहीं कहा जा सकता।

35. 35. माननीय एकल न्यायाधीश ने रिट याचिकाकर्ताओं के तर्कों पर विचार किया, न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत संबंधित अभिलेखों का अवलोकन किया और इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि जिस आधार पर रिट याचिकाकर्ताओं ने अपना तर्क प्रस्तुत किया था, वह आधार ही त्रुटिपूर्ण था। कुल मिलाकर छह सदस्य थे–एक अध्यक्ष और पाँच सदस्य। एक अवसर को छोड़कर, जब भी संबंधित निर्णय लिए गए, वे उपस्थित थे। हमने ऊपर कार्यवाही विवरण (मिनट्स) के महत्वपूर्ण अंश उद्धृत किए हैं। उनसे भी यह स्पष्ट होता है कि 7 जुलाई 2005 को, जब त्रुटियों, गलतियों, अस्पष्टताओं आदि के कारण हुई कथित 'अन्याय' को दूर करने के लिए एक विशेष पद्धति अपनाने का निर्णय लिया गया, तब अध्यक्ष सहित पाँच सदस्य उपस्थित थे और निर्णय लिया गया। आयोग

के अनुसार, प्रो. टीकू उस समय शहर से बाहर थे और इसलिए उपस्थित नहीं हो सके। तथापि, बैठक में उपस्थित पाँचों सदस्यों द्वारा यह निर्णय सर्वसम्मति से लिया गया था। अभिलेखों से और माननीय एकल न्यायाधीश के निष्कर्ष के अनुसार यह भी स्पष्ट है कि बाद की बैठकों में प्रो. टीकू उपस्थित थे और उन्होंने 7 जुलाई 2005 को आयोग द्वारा लिए गए पूर्व निर्णय से सहमति भी व्यक्त की। यह निस्संदेह सत्य है कि बाद में दो सदस्यों ने पहले लिए गए निर्णयों से असहमति व्यक्त की। तथापि, इससे पूर्व में की गई कार्रवाई अवैध, कानून के विरुद्ध या अन्यथा दोषपूर्ण नहीं हो जाती।

36. इस संदर्भ में माननीय एकल न्यायाधीश ने 1980 के नियमों के नियम 6 तथा 9 का उल्लेख किया। प्रथम नियम कोरम से संबंधित है, जो इस प्रकार है–

कोरम - जहाँ सदस्यों की संख्या सम हो, वहाँ कुल संख्या के आधे के साथ एक अतिरिक्त सदस्य बैठक के लिए कोरम का गठन करेगा। जहाँ सदस्यों की संख्या विषम हो, वहाँ कोरम ऐसी संख्या होगी जो कुल सदस्यों की संख्या के आधे से अधिक हो।

37. दूसरा नियम आयोग के निर्णय से संबंधित है, जो इस प्रकार प्रावधान करता है–आयोग का निर्णय - आयोग की बैठक में लिए जाने वाले निर्णय सदस्यों के बहुमत के मत के अनुरूप लिए जाएंगे। मतों की समानता की स्थिति में अध्यक्ष को निर्णायक मत का अधिकार होगा। जहाँ किसी प्रकरण को परिसंचरण के माध्यम से विचारार्थ भेजा गया हो और मतभेद उत्पन्न हो जाए, वहाँ उस प्रकरण को पुनः असहमति

व्यक्त करने वाले सदस्य/सदस्यों को संदर्भित किया जाएगा। यदि उक्त सदस्य/सदस्यगण अपने पूर्व में व्यक्त मत पर ही दृढ़ रहते हैं, तो उस प्रकरण को आयोग की बैठक में अंतिम निर्णय के लिए प्रस्तुत किया जाएगा।

38. नियम 11, कार्यवृत्त के अभिलेखन से संबंधित है, जो इस प्रकार है–

निर्णयों का अभिलेख - आयोग की बैठक में लिए गए समस्त निर्णयों को सचिव द्वारा अभिलिखित किया जाएगा। कार्यवृत्त का प्रारूप सचिव द्वारा अध्यक्ष की स्वीकृति हेतु प्रस्तुत किया जाएगा। तत्पश्चात कार्यवृत्त को सदस्यों के मध्य परिसंचारित किया जाएगा तथा बाद में आयोग की अगली बैठक में औपचारिक पुष्टि के लिए प्रस्तुत किया जाएगा।

39. उपर्युक्त प्रावधानों तथा पूर्वोक्त निर्णयों के आलोक में यह स्पष्ट है कि आयोग द्वारा की गई कार्यवाही को नियमों के प्रतिकूल नहीं कहा जा सकता। आयोग द्वारा लिए गए निर्णय या तो सर्वसम्मति से लिए गए थे अथवा बहुमत से।हमारे मत में माननीय एकल न्यायाधीश का यह निष्कर्ष सर्वथा उचित था कि जिन आधारों पर रिट याचिकाकर्ताओं ने अपना दावा स्थापित किया तथा न्यायालय को यह विश्वास दिलाने का प्रयास किया कि अध्यक्ष के अतिरिक्त केवल तीन सदस्य थे और समस्त निर्णय एक ही व्यक्ति, अर्थात् आयोग के अध्यक्ष द्वारा लिए गए थे, वह धारणा पूर्णतः निराधार तथा तथ्यहीन थी।यह भी स्पष्ट है कि प्रारंभिक चरण में जब उक्त कार्यप्रणाली को अपनाया गया, उस समय 7 जुलाई, 2005 को आयोजित बैठक में अध्यक्ष सहित पाँच

सदस्य उपस्थित थे तथा सभी ने आयोग द्वारा प्रस्तावित योजना से सहमति व्यक्त की थी। यद्यपि उस दिन प्रोफेसर टिकू उपस्थित नहीं थे, तथापि पश्चात् उन्होंने भी उक्त कार्यवाही से अपनी सहमति प्रदान कर दी। इसके उपरांत भी लिए गए निर्णय आयोग के नियमों के अनुरूप सर्वसम्मति अथवा बहुमत से ही लिए गए।

40. जहाँ तक चौधरी बशीर अहमद की भागीदारी का प्रश्न है, रिट याचिकाकर्ताओं का यह तर्क था कि वे अयोग्य हो गए थे और उन्होंने स्वयं को इस प्रक्रिया से अलग कर लेना चाहिए था, क्योंकि उनका पुत्र उक्त परीक्षा में सम्मिलित हो रहा था। अतः उन्हें बैठक में उपस्थित होने तथा प्रक्रिया में भाग लेने से स्वयं को अलग कर लेना चाहिए था।यह तर्क निराधार है। माननीय एकल न्यायाधीश ने यह अभिमत व्यक्त किया कि अयोग्यता का प्रश्न तभी उत्पन्न हो सकता था जब वे चयन की उस अवस्था में भाग लेते, जहाँ किसी अभ्यर्थी की योग्यता अथवा मेरिट का मूल्यांकन किया जाना था। हमारे मत में माननीय एकल न्यायाधीश का यह निष्कर्ष सही है। आयोग द्वारा यह स्पष्ट किया गया है कि चयन प्रारंभिक परीक्षा के आधार पर नहीं किया गया था। प्रारंभिक परीक्षा केवल योग्यता प्राप्त करने तथा द्वितीय चरण, अर्थात् मुख्य परीक्षा में प्रवेश प्राप्त करने के उद्देश्य से आयोजित की गई थी। दूसरे शब्दों में, यह मात्र एक 'स्क्रीनिंग टेस्ट' था और अंतिम चयन अथवा मेरिट का निर्धारण प्रारंभिक परीक्षा के परिणाम के आधार पर नहीं किया जाना था।इसके अतिरिक्त, जहाँ तक आयोग का संबंध है, आयोग ने किसी भी व्यक्तिगत अभ्यर्थी के पक्ष अथवा विपक्ष में कोई निर्णय नहीं लिया था, बल्कि यह एक नीतिगत निर्णय था।

प्रश्नपत्रों के संबंध में व्यापक स्तर पर प्राप्त शिकायतों को दृष्टिगत रखते हुए सामान्य प्रकृति की कार्यवाही करना आवश्यक था। यह सुनिश्चित करना आवश्यक था कि किसी भी अभ्यर्थी को ऐसी त्रुटियों के कारण हानि न हो, जिनमें उसका कोई दोष न हो।ऐसी स्थिति पर विचार करते हुए तथा उसका समाधान खोजने के उद्देश्य से यह आवश्यक था कि आयोग के सभी सदस्य विचार-विमर्श में भाग लें और उपयुक्त निर्णय लें। यहाँ किसी भी व्यक्तिगत अभ्यर्थी के प्रति पक्षपात या विशेष अनुग्रह प्रदर्शित करने का प्रश्न ही नहीं उठता। अतः हम उच्च न्यायालय के इस निष्कर्ष से सहमत हैं कि चौधरी बशीर अहमद को बैठकों में उपस्थित होने तथा कार्यवाही में भाग लेने से अयोग्य नहीं ठहराया जा सकता।

41. हम रिट याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत इस तर्क से भी प्रभावित नहीं हैं कि जो अभ्यर्थी असफल रहे थे उन्हें लाभ प्रदान किया गया, जबकि सफल अभ्यर्थियों को ऐसा ही लाभ नहीं दिया गया, जिससे सफल अभ्यर्थियों के साथ अन्याय हुआ है। प्रथम दृष्टया, यह ध्यान देने योग्य है कि प्रारंभिक परीक्षा में सफल रहे अभ्यर्थियों ने स्वयं ऐसा कोई तर्क प्रस्तुत नहीं किया है, और यह आश्चर्यजनक है कि असफल अभ्यर्थी ही यह तर्क प्रस्तुत कर रहे हैं कि यद्यपि उन्हें अतिरिक्त अंक का लाभ प्रदान किया गया, किंतु सफल अभ्यर्थियों को ऐसा लाभ नहीं दिया गया।परंतु अन्यथा भी यह तर्क स्वीकार्य नहीं है। जैसा कि पूर्व में उल्लेख किया जा चुका है, प्रारंभिक परीक्षा चयन प्रक्रिया का केवल प्रथम चरण थी और उसका उद्देश्य मात्र 1:13 के अनुपात में अभ्यर्थियों का चयन कर उन्हें सूचीबद्ध करना था। इसकाअंतिम चयन अथवा

मेरिट सूची/चयन सूची तैयार करने से कोई संबंध नहीं था।प्रारंभिक परीक्षा में प्राप्त अंकों को अंतिम चयन अथवा मेरिट सूची की तैयारी के लिए नहीं जोड़ा जाना था। उसका उद्देश्य केवल अभ्यर्थियों को मुख्य परीक्षा में प्रवेश प्रदान करना था।अतः यह नहीं कहा जा सकता कि अचयनित अभ्यर्थियों को दिए गए अतिरिक्त अंकों का लाभ चयनित अभ्यर्थियों को न देने से उनके साथ कोई अन्याय हुआ है।

42. जहाँ तक दूसरे प्रश्न का संबंध है, माननीय एकल न्यायाधीश ने यह अभिमत व्यक्त किया कि अनिवार्य विषयों तथा वैकल्पिक विषयों दोनों में प्रश्नों में त्रुटियाँ थीं। माननीय एकल न्यायाधीश ने यह भी माना कि यह विश्वास करना कठिन है कि आयोग द्वारा आवश्यक निर्देश समय पर पर्यवेक्षकों को जारी किए गए थे तथा उन्हें परीक्षा केंद्रों पर घोषित कर आवश्यक संशोधन कर दिए गए थे।हमारे मत में माननीय एकल न्यायाधीश द्वारा इस प्रकार का निष्कर्ष दर्ज करना त्रुटिपूर्ण नहीं कहा जा सकता। अभिलेखों से यह स्पष्ट होता है कि अभ्यर्थियों द्वारा प्रश्नपत्रों में त्रुटियों, अशुद्धियों, अस्पष्ट उत्तरों, गलत उत्तरों आदि के संबंध में पर्यवेक्षकों के समक्ष शिकायतें की गई थीं।पर्यवेक्षकों ने तत्पश्चात इन शिकायतों की सूचना उस नियंत्रण कक्ष को दी, जिसे आयोग द्वारा विशेष रूप से ऐसी शिकायतें प्राप्त करने के लिए स्थापित किया गया था। आयोग द्वारा दायर शपथपत्र के अनुसार आयोग ने उन शिकायतों पर विचार किया, मूल पांडुलिपियों को खोला, मुद्रित प्रश्नों का उनसे मिलान किया, आवश्यक संशोधनों के संबंध में पर्यवेक्षकों को सूचित किया तथा उसके पश्चात उन संशोधनों को लागू किया गया।माननीय एकल न्यायाधीश ने यह भी उल्लेख किया कि इस बात

का कोई प्रमाण अभिलेख पर उपलब्ध नहीं है कि आयोग द्वारा परीक्षा की अवधि बढ़ाई गई थी। उनके अनुसार, ऐसी स्थिति में यह संभव प्रतीत नहीं होता कि सभी परीक्षा केंद्रों पर उन संशोधनों की सूचना समय रहते पहुँचा दी गई हो तथा परीक्षा की अवधि के भीतर उन्हें अभ्यर्थियों के संज्ञान में ला दिया गया हो।

43. इस संदर्भ में माननीय एकल न्यायाधीश ने निम्न प्रकार से अभिमत व्यक्त किया–

"इस संबंध में मैंने आयोग के अभिलेखों का अवलोकन किया है। अभिलेखों में ऐसा कोई सामग्री उपलब्ध नहीं है जिससे यह स्पष्ट हो सके कि वे कौन-से प्रश्न थे जिनकी वर्तनी को किसी परीक्षा केंद्र के पर्यवेक्षी स्टाफ द्वारा स्पष्ट करने का प्रयास किया गया था, और वे कौन-से प्रश्न थे जिन्हें वास्तव में आयोग द्वारा सत्यापित कर संबंधित पर्यवेक्षकों को घोषणा करने हेतु सूचित किया गया था। ऐसे अभिलेखों के अभाव में यह स्वीकार नहीं किया जा सकता कि प्रश्नपत्रों में मुद्रण त्रुटियाँ/वर्तनी संबंधी गलतियाँ परीक्षा केंद्रों पर वास्तविक घोषणाओं के माध्यम से विधिवत सुधार दी गई थीं।अतः वे सभी प्रश्न, जिनमें प्रयुक्त शब्दों की वर्तनी गलत है, गलत प्रश्न माने जाएंगे। समाजशास्त्र के प्रश्नपत्र में ऐसे कुल 12 प्रश्न हैं, अर्थात् प्रश्न संख्या 17, 37, 46, 53, 60, 72, 73, 83, 93, 97, 98 और 113, जिनमें मुद्रण त्रुटियाँ/वर्तनी की गलतियाँ हैं। इन प्रश्नों में से प्रश्न संख्या 113 को आयोग ने स्वयं ही हटा दिया है, क्योंकि उसमें 'Kwekiuti' शब्द में मुद्रण त्रुटि थी।

आयोग का यह तर्क कि केवल वे प्रश्न हटाए गए जिनमें गंभीर मुद्रण त्रुटियाँ थीं अथवा जिन्हें घोषणाओं के माध्यम से ठीक नहीं किया जा सका, समान रूप से स्वीकार्य नहीं है। अभिलेखों में ऐसा कोई रिकॉर्ड उपलब्ध नहीं है जिससे यह सिद्ध हो सके कि किन प्रश्नों को वास्तव में घोषणाओं द्वारा ठीक किया गया था। अतः यह न तो कहा जा सकता है और न ही आयोग द्वारा यह दर्शाया गया है कि कौन-से प्रश्न ऐसे थे जिनमें मुद्रण त्रुटियाँ थीं और जिन्हें सुधारना आवश्यक था, किन्तु परीक्षा केंद्रों पर घोषणाओं के माध्यम से उनका सुधार नहीं किया गया।इसके अतिरिक्त, ऐसा कोई नीतिगत निर्णय भी अभिलेखों में प्रदर्शित नहीं किया गया है, जिसके द्वारा यह निर्धारित किया गया हो कि कौन-सी मुद्रण त्रुटियाँ गंभीर मानी जाएँगी और कौन-सी सामान्य/लघु । ऐसी नीति के अभाव में आयोग प्रश्नपत्र से प्रश्नों को हटाने के उद्देश्य से गंभीर एवं लघु मुद्रण त्रुटियों के आधार पर कोई वैध भेद नहीं कर सकता था।यदि आयोग ने अपनी समझ के अनुसार मुद्रण त्रुटि के कारण प्रश्न संख्या 113 को प्रश्नपत्र से हटा दिया, तो उसी सिद्धांत के आधार पर आयोग को समाजशास्त्र के प्रश्नपत्र में मौजूद सभी ऐसे प्रश्नों को हटाना चाहिए था जिनमें मुद्रण त्रुटियाँ थीं। केवल एक प्रश्न को हटाने की आयोग की कार्यवाही मनमानी तथा अयुक्तियुक्तता के दोष से ग्रस्त है। अतः प्रश्न संख्या 113 के अनुरूप ही शेष 11 प्रश्नों को भी समाजशास्त्र के प्रश्नपत्र से हटाया जाना चाहिए था।

इसके अतिरिक्त, यदि यह मान भी लिया जाए कि परीक्षा केंद्रों पर गलत प्रश्नों की वर्तनी सुधारने हेतु घोषणाएँ की गई थीं, तो भी उदाहरण के लिए समाजशास्त्र के प्रश्नपत्र को ही लें, जिसमें स्वीकार रूप से 12

प्रश्नों में वर्तनी की गलतियाँ/मुद्रण त्रुटियाँ थीं। संबंधित केंद्रों के पर्यवेक्षकों को अभ्यर्थियों की आपत्तियाँ दर्ज करने में कुछ समय लगा होगा, फिर उन्हें आयोग द्वारा स्थापित नियंत्रण कक्ष को सूचित करने में भी समय लगा होगा।नियंत्रण कक्ष में भी अध्यक्ष तथा परीक्षा नियंत्रक द्वारा मूल पांडुलिपियों से सही वर्तनी का सत्यापन करने तथा तत्पश्चात पर्यवेक्षी स्टाफ को सूचित करने में समय लगा होगा। इसके बाद पर्यवेक्षी स्टाफ को भी उन 12 गलत वर्तनी वाले प्रश्नों के सुधार हेतु घोषणाएँ करने में समय लगा होगा। सम्भावना है कि प्रत्येक प्रश्न को ठीक करने में कम से कम एक मिनट लगा होगा। इस प्रकार कुल दो घंटे की परीक्षा अवधि में कम से कम 12 मिनट व्यर्थ चले गए होंगे।यह आयोग का मामला नहीं है कि ऐसे प्रश्नपत्रों को पूरा करने के लिए निर्धारित समय को कभी बढ़ाया गया हो। समय का विस्तार न किया जाना भी इस बात की ओर संकेत करता है कि संभवतः परीक्षा केंद्रों पर वर्तनी सुधारने संबंधी घोषणाएँ वास्तव में की ही नहीं गई थीं।अतः किसी भी दृष्टिकोण से इस मुद्दे को देखने पर केवल एक ही निष्कर्ष निकलता है कि जिन प्रश्नों में वर्तनी संबंधी त्रुटियाँ हैं, उन्हें गलत प्रश्न माना जाना चाहिए और उन्हें भी प्रश्नपत्र से हटा दिया जाना चाहिए।इसी प्रकार याचिकाकर्ताओं ने प्राणिविज्ञान के 8 प्रश्न,भूविज्ञान के 11 प्रश्न,भूगोल के 9 प्रश्न, रसायन विज्ञान के 8 प्रश्न, कृषि के 6 प्रश्न, गणित के 6 प्रश्न, यांत्रिक अभियांत्रिकी के 2 प्रश्न तथा विधि के 1 प्रश्न पर यह आपत्ति उठाई कि उनमें वर्तनी की त्रुटियों/मुद्रण दोष के कारण वे अमान्य हैं।आयोग के अनुसार उपर्युक्त आठ विषयों के कुल 55 प्रश्नों को इसलिए नहीं हटाया गया क्योंकि उन्हें परीक्षा कक्षों में

की गई घोषणाओं के माध्यम से ठीक कर दिया गया था तथा विषय का ज्ञान रखने वाले अभ्यर्थियों के लिए वे त्रुटियाँ समझ में आने योग्य थीं।किन्तु पूर्व में दिए गए कारणों के आधार पर आयोग का यह रुख स्वीकार्य नहीं है। अतः समाजशास्त्र विषय के 11 प्रश्नों के अतिरिक्त उपर्युक्त 55 प्रश्नों को भी, पहले से हटाए गए प्रश्नों के अतिरिक्त, प्रश्नपत्र से हटाया जाना चाहिए था।"

44. माननीय एकल न्यायाधीश द्वारा उपर्युक्त टिप्पणियाँ करना उचित एवं सही था।

45. इसके अतिरिक्त एक अन्य तथ्य भी है, जो इस दृष्टिकोण का समर्थन करता है। अभिलेखों से यह स्पष्ट होता है कि शिकायतें प्राप्त होने के पश्चात आयोग ने 6 जुलाई, 2005 को एक प्रेस नोट जारी किया था और अभ्यर्थियों को आश्वासन दिया था कि आयोग इस विषय पर विचार करेगा तथा उनके साथ किसी प्रकार का अन्याय नहीं होने दिया जाएगा। आयोग ने इस संबंध में विशेषज्ञों की राय भी प्राप्त की और तत्पश्चात स्वप्रेरणा से कुछ प्रश्नों को हटाने का निर्णय लिया तथा उन प्रश्नों के अंक शेष प्रश्नों में प्रो-राटा के आधार पर वितरित करने का निर्णय किया। इससे यह स्पष्ट है कि आयोग के अपने मतानुसार भी परीक्षा समाप्त होने के पश्चात कुछ सुधारात्मक कार्रवाई करना आवश्यक था।

46. इसके पश्चात यह तर्क प्रस्तुत किया गया कि जब उच्च न्यायालय ने यह पाया कि प्रारंभिक परीक्षा विधि के अनुरूप आयोजित नहीं की गई थी, तब उसे परीक्षा को निरस्त कर देना चाहिए था और नई परीक्षा

आयोजित करने का निर्देश देना चाहिए था। इसके अतिरिक्त कोई तीसरा विकल्प उपलब्ध नहीं था। इस संदर्भ में अधिवक्ता द्वारा इस न्यायालय के निर्णय ***विजय सिंह चरक बनाम भारत संघ एवं अन्य*** की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया गया, जिसमें यह कहा गया था कि यदि उच्च न्यायालय में चयन सूची को चुनौती दी जाती है, तो न्यायालय या तो उसे अवैध पाकर निरस्त कर सकता है, अथवा उसकी वैधता को बनाए रख सकता है; इसके अतिरिक्त कोई अन्य विकल्प उपलब्ध नहीं होता।हमारे मत में विजय सिंह प्रकरण में प्रतिपादित सिद्धांत का वर्तमान मामले पर कोई अनुप्रयोग नहीं है। उस मामले में उच्च न्यायालय ने रिट याचिका का निपटारा करते हुए यह टिप्पणी की थी–

"यदि याचिकाकर्ता रिट याचिकाएँ वापस ले लेते हैं, तो सरकार प्रस्तावित आई.एफ.एस. 1991 की चयन सूची को पुनः चयन समिति के पास भेजेगी, जहाँ याचिकाकर्ताओं और प्रतिवादियों द्वारा उठाए गए बिंदुओं पर नियमों के अनुसार विचार किया जाएगा। चयन समिति द्वारा अनुमोदित अंतिम सूची पक्षकारों पर अंतिम और बाध्यकारी होगी।

उपरोक्त आश्वासन के मद्देनज़र याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता ने निवेदन किया कि वे रिट याचिकाओं पर आग्रह नहीं करना चाहते और उन्हें वापस लिए जाने के रूप में निरस्त कर दिया जाए।

हम तदनुसार आदेश पारित करते हैं।"

47. उपर्युक्त उद्धृत अंश से स्पष्ट है कि उस मामले में उच्च न्यायालय ने याचिकाकर्ताओं को रिट याचिका वापस लेने की अनुमति दी और सरकार

को निर्देश दिया कि प्रस्तावित चयन सूची को पुनः चयन समिति को भेजा जाए, जहाँ याचिकाकर्ताओं और प्रतिवादियों द्वारा उठाए गए बिंदुओं पर विचार किया जाए। स्पष्ट रूप से, इस न्यायालय ने उस पद्धति को स्वीकृति नहीं दी और यह निर्णय दिया कि उच्च न्यायालय द्वारा ऐसा मार्ग अपनाना उचित नहीं था।

48. वर्तमान मामले में आयोग ने विशेषज्ञों की राय के आधार पर स्वप्रेरणा से कुछ सुधारात्मक कदम उठाए। इसके पश्चात जब उच्च न्यायालय को यह प्रतीत हुआ कि कुछ और कार्यवाही आवश्यक है और उसने कुछ निर्देश जारी किए, तब आयोग ने माननीय एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश एवं निर्देशों को स्वीकार कर लिया और उसे चुनौती नहीं दी।

हमारे मत में आयोग द्वारा अपनाया गया दृष्टिकोण न तो अनुचित कहा जा सकता है और न ही अविवेकपूर्ण । वास्तव में ऐसी परिस्थितियों में न्यायालय द्वारा उचित सुधारात्मक उपाय अपनाए जाना सदैव संभव है।

49. ***कानपुर विश्वविद्यालय बनाम समीर गुप्ता प्रकरण*** में विश्वविद्यालय द्वारा चिकित्सा पाठ्यक्रम में प्रवेश के लिए संयुक्त प्री-मेडिकल परीक्षा आयोजित की गई थी। प्रश्न वस्तुनिष्ठ प्रकार के थे तथा प्रत्येक प्रश्न के लिए चार विकल्प दिए गए थे, जिनमें से तीन गलत थे।

इस न्यायालय ने यह प्रतिपादित किया कि न्यायालय सामान्यतः यह अनुमान करेगा कि उत्तर-कुंजी सही है और उसी आधार पर परीक्षा

का मूल्यांकन किया जाएगा। किन्तु यदि यह सिद्ध हो जाए कि कोई उत्तर-कुंजी स्पष्ट रूप से गलत है अथवा ऐसी है जिसे विषय का ज्ञान रखने वाला कोई भी युक्तिसंगत व्यक्ति सही नहीं मान सकता, तो छात्रों को उस उत्तर के अनुसार उत्तर न देने के कारण दंडित करना अनुचित होगा। ऐसी स्थिति में न्यायालय उचित निर्देश जारी कर सकता है।

50. न्यायालय की ओर से निर्णय देते हुए तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश यशवंत विष्णु चंद्रचूड़ ने कहा–

"यदि राज्य सरकार भविष्य में ऐसी त्रुटियों की पुनरावृत्ति से बचना चाहती है, तो उसे अपने संरक्षण में एक पाठ्य-पुस्तक तैयार करवानी चाहिए, जिसे संयुक्त प्री-मेडिकल परीक्षा में सम्मिलित होने वाले छात्रों के लिए अनिवार्य रूप से निर्धारित किया जाए।शिक्षा के क्षेत्र में राजनीति का हस्तक्षेप अत्यधिक है, जो हमारे विश्वविद्यालयों के लिए एक अभिशाप बन गया है। ऐसी पाठ्य-पुस्तक के संकलन में अनेक समस्याएँ उत्पन्न होंगी, क्योंकि विभिन्न आवेदक यह कार्य करने के लिए आगे आएँगे और इस बात पर मतभेद उत्पन्न होंगे कि यह कार्य किसे सौंपा जाए। यदि राज्य इन कठिनाइयों को दूर करने में सफल हो जाता है, तो छात्रों के लिए यह तर्क प्रस्तुत करना संभव नहीं रहेगा कि निर्धारित पाठ्य-पुस्तक में दिया गया उत्तर सही नहीं है। दूसरे, राज्य सरकार को यह व्यवस्था करनी चाहिए कि प्रश्नपत्र तैयार करने वालों द्वारा दी गई उत्तर-कुंजी का मॉडरेशन किया जाए।

तीसरे, यदि अंग्रेज़ी के प्रश्नों का हिंदी में अनुवाद किया जाना हो, तो केवल हिंदी भाषा के विशेषज्ञ को अनुवादक नियुक्त करना पर्याप्त नहीं है। अनुवादक को वैज्ञानिक शब्दावली के अर्थ और अनुवाद की कला का भी ज्ञान होना चाहिए।

चौथे, बहुविकल्पीय वस्तुनिष्ठ परीक्षा की प्रणाली में यह विशेष सावधानी रखी जानी चाहिए कि प्रश्नपत्र में ऐसे प्रश्न न पूछे जाएँ जिनका अर्थ अस्पष्ट हो। इस प्रकार की परीक्षा प्रणाली में केवल सही उत्तर पर चिन्ह लगाना होता है; इसमें तर्क या व्याख्या के लिए कोई स्थान नहीं होता। उत्तर केवल 'हाँ' या 'नहीं' होता है। इसलिए आवश्यक है कि प्रश्न स्पष्ट और निर्विवाद हों।अंततः, यदि विश्वविद्यालय का ध्यान किसी उत्तर-कुंजी की त्रुटि या प्रश्न की अस्पष्टता की ओर आकर्षित किया जाता है, तो विश्वविद्यालय को शीघ्र और समयबद्ध निर्णय लेते हुए यह घोषित करना चाहिए कि वह संदिग्ध प्रश्न प्रश्नपत्र से हटा दिया जाएगा और उसके लिए कोई अंक निर्धारित नहीं किए जाएँगे।"

51. न्यायालय ने आगे कहा–

"इन कार्यवाहियों से कुल 27 छात्र संबंधित थे। इनमें से 8 छात्रों को बी.डी.एस. पाठ्यक्रम में प्रवेश दिया जा चुका था, 3 छात्रों को पिछले वर्ष ही एम.बी.बी.एस. पाठ्यक्रम में उन छात्रों के स्थान पर प्रवेश मिल गया था जिन्होंने पढ़ाई छोड़ दी थी, और 5 छात्रों को इस वर्ष प्रवेश मिल चुका है।जो 8 प्रतिवादी पहले ही एम.बी.बी.एस. पाठ्यक्रम में प्रवेश पा चुके हैं, उन्हें अलग रखते हुए शेष 19 छात्रों को उच्च न्यायालय के

निर्देशानुसार प्रवेश दिया जाना आवश्यक है। यदि उत्तर-कुंजी गलत न होती, तो उन्हें प्रवेश प्राप्त हो जाता।उच्च न्यायालय के निष्कर्षों के आलोक में यह प्रश्न उत्पन्न हुआ कि जिन तीन प्रश्नों के उत्तर छात्रों ने दिए थे और जिन्हें विश्वविद्यालय ने गलत मूल्यांकित किया था, उनके लिए उन्हें कितने अंक दिए जाएँ। उच्च न्यायालय ने यह निर्धारित किया कि यदि किसी छात्र ने उन प्रश्नों में सही विकल्प चुना है, तो उसे प्रत्येक प्रश्न के लिए 3 अंक दिए जाएँगे, और साथ ही 1 अतिरिक्त अंक भी दिया जाएगा, क्योंकि गलत उत्तर मानकर उनके कुल अंकों से 1 अंक काट लिया गया था।संक्षेप में, जिन छात्रों ने उन तीन प्रश्नों या उनमें से किसी का भी उत्तर देने का प्रयास किया है, उन्हें प्रत्येक प्रश्न के लिए 4 अंक अतिरिक्त दिए जाएँगे। यदि उत्तर-पुस्तिकाओं का पुनर्मूल्यांकन इस सूत्र के अनुसार किया जाता है, तो छात्रों को एम.बी.बी.एस. पाठ्यक्रम में प्रवेश प्राप्त करने का अधिकार होगा, जिस पर कोई विवाद नहीं है।अतः हम उन विशेष प्रश्नों के पुनर्मूल्यांकन तथा प्रतिवादियों को एम.बी.बी.एस. पाठ्यक्रम में प्रवेश देने संबंधी उच्च न्यायालय के निर्देशों की पुष्टि करते हैं।"यदि आप चाहें तो मैं इस पूरे निर्णय का छोटा "लीगल नोट / केस नोट" भी बना सकता हूँ, जो कोर्ट में उद्धरण और तर्क के लिए बहुत उपयोगी होता है।

52. ***अभिजीत सेन बनाम उत्तर प्रदेश*** राज्य प्रकरण में कानपुर विश्वविद्यालय बनाम समीर गुप्ता में प्रतिपादित सिद्धांत को पुनः दोहराया गया तथा उसे 'भ्रामक अथवा पेचीदा प्रश्नों पर भी लागू किया गया।

53. हमारे विचार में माननीय एकल न्यायाधीश ने विवाद का उचित दृष्टिकोण से परीक्षण किया तथा प्रश्नपत्रों में पाई गई त्रुटियों, गलतियों एवं असंगतियों के आलोक में ऐसे आवश्यक निर्देश जारी किए, जिनसे छात्र समुदाय को लाभ प्राप्त हुआ। जैसा कि हमने इस निर्णय के पूर्व भाग में उल्लेख किया है, आयोग द्वारा उक्त निर्देशों के अनुपालन में आवश्यक कार्यवाही की गई और मेरिट सूची का पुनर्निर्धारण किया गया। कुछ ऐसे अभ्यर्थी, जिन्हें पूर्व में अयोग्य घोषित किया गया था, उन्हें बाद में योग्य माना गया और इस संबंध में अधिसूचना भी जारी की गई। हमारे मत में इस प्रकार की कार्यवाही पर कोई आपत्ति नहीं की जा सकती।

54. यह सत्य है, जैसा कि रिट याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा तर्क दिया गया कि खंडपीठ ने रिट याचिकाओं में उठाए गए सभी तर्कों पर विचार नहीं किया तथा माननीय एकल न्यायाधीश द्वारा किए गए निर्णय के सभी बिंदुओं का परीक्षण नहीं किया। यह भी सत्य है कि खंडपीठ का आदेश अत्यंत संक्षिप्त है। किन्तु प्रश्न के महत्व तथा उसके दूरगामी प्रभाव को दृष्टिगत रखते हुए हमने इस मामले पर विस्तार से विचार किया, संबंधित अभिलेखों का अवलोकन किया और पक्षकारों द्वारा उठाए गए सभी बिंदुओं की पुनः समीक्षा की। हमने यह उचित समझा कि मामले को पुनः उच्च न्यायालय की खंडपीठ के पास भेजने के बजाय अंतिम रूप से स्वयं ही निर्णय कर दिया जाए, क्योंकि ऐसा करने से अनावश्यक विलंब होता।हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि माननीय एकल न्यायाधीश द्वारा प्रारंभिक परीक्षा को निरस्त न करना तथा आयोग को पुनः परीक्षा आयोजित करने का निर्देश न देना पूर्णतः

उचित था। उपलब्ध अभिलेखों के आधार पर माननीय एकल न्यायाधीश ने आवश्यक निर्देश जारी किए, जो अभ्यर्थियों के हित में तथा प्रशासनिक व्यवस्था के व्यापक हित में थे।

अतः माननीय एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश तथा जारी निर्देशों में हमें कोई त्रुटि प्रतीत नहीं होती, और इसलिए उनमें किसी प्रकार के हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

55. उपर्युक्त कारणों के आधार पर हम यह निर्णय देते हैं कि उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश को अवैध, गैरकानूनी अथवा आपत्तिजनक नहीं कहा जा सकता। अतः सभी अपीलें निरस्त की जाती हैं। तथापि, व्यय के संबंध में कोई आदेश नहीं दिया जाता।

आर.पी. अपील खारिज।।

यह अनुवाद पैनल अनुवादक
सुश्री मधु कुमारी के द्वारा किया गया है।